धारा...61 ग्रंथांक...269

आत्मानुशासन-गीताञ्जली

(गद्य-पद्यमय)

आचार्य कनकनन्दी

पुण्य स्मरण

द्वय क्षुल्लिका दीक्षा व पंचकल्याणक के उपलक्ष्य में

स्वैच्छिक अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)

1. स्व. श्री वालचन्द जी सेलवाड़ीया, मुंबई की पुण्य स्मृति में कमल कुमार द्वारा
2. श्रीमती कमला देवी-सुरेश कुमार जी सुपुत्री दर्शना (सर्वऋतु विलास), उदयपुर

ग्रन्थांक-269 प्रतियाँ-500
संस्करण-2017 (प्रथम) मूल्य-101/- रु.

सम्पर्क सूत्र व प्राप्ति स्थान

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त

(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान

द्वारा-श्री छोटूलाल जी चित्तौड़ा

चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,
उदयपुर (राज.)-313001/मो. 097832-16418

(2) डॉ. नारायणलाल कछारा

सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान
55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001
फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622
E-mail:nlkachhara@yahoo.com

आचार्यश्री कुन्थुसागर जी का आशीर्वाद आ. कनकनन्दी के साहित्य हेतु

।।श्री चिंतामणी पार्श्वनाथाय नमः।।

श्री गणाधिपती गणधराचार्य
कुन्थुसागर विद्या शोध संस्थान

हातकणंगले - रामलिंगरोड, श्री क्षेत्र कुन्थुगिरी, मु.पो. आळते-416109
ता. हातकणंगले, जि. कोल्हापुर

दिनांक : 24.12.2016

श्री

आचार्यश्री कनकनन्दी जी महाराज को मेरा प्रति नमोस्तु।

आपका रत्नत्रय अच्छा होगा मेरा भी अच्छा है। आपका समाचार आया सभी विषय ज्ञात हुआ।

आपकी पुस्तकें वर्तमान में ज्ञान प्राप्त कराने के लिए अत्यंत उपयोगी हैं। इन पुस्तकों को पढ़ करके सहज ही ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। जिनागम के अनुसार ज्ञान-विज्ञान व तत्त्वों का समावेश है। जो भी पढ़ता है उसको जैनागम के अनुसार विज्ञान प्राप्त कर लेता है। आपका प्रयत्न अत्यंत सराहनीय है। आप इसी प्रकार प्रयत्न करते रहिये ऐसा मेरा आशीर्वाद है।

आप अपना स्वास्थ्य अच्छा रखें।

ग.आ. कुन्थुसागर...

आचार्य स्तुति

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : ऊँचे-ऊँचे शिखरों वाला है.....)

उच्च-उच्च भाव/(गुण, लक्ष्य) धारे हैं...ये सूरीवर हमारे...
सूरीवर हमारे ये...जग से हैं न्यारे...उच्च...(ध्रुव)...

प्रज्ञाशाली शीलवंत हो...आगम पारगामी धैर्यवान् हो...
लोकज्ञता युत स्व-पर ज्ञाता हो...स्व-पर मत तात्कालीन ज्ञाता हो...
अलौकिक लक्ष्यधारी हैं...ये गुरुवर हमारे...(1)...

प्रशस्तवान्-प्रशमवान् हो...नवीन-नवीन कल्पनावान् हो...

प्रश्नसह पूर्व उत्तरवान् हो...अनिन्दक परमनोहारी हो...
स्पष्ट-मिष्ट-हित उपदेशी (हो)...यति-पति हमारे...(2)...

अनेकांती-उदारभावी हो...शिष्य अनुग्रहकारी (प्रभु) अनुशास्ता हो...
पर उपकारी मार्गदर्शक हो...क्षमा मृदुता संयमधारी हो...
गंभीर शांत सौम्य मूर्ति...ये गुरुवर हमारे...(3)...

साधु-पाठक गुण-गणधारी हो...छत्तीस मूल गुणधारी हो...
शिक्षा-दीक्षा-प्रायश्चित्तदाता...चतुर्विध संघ के अनुशास्ता...
स्व-पर प्रकाशी ज्ञानदाता...ये सूरीश्वर हमारे...(4)...

अपरस्त्रावी उपगूहन अंगधारी...ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा परिहारी...
गुणी से सेवित गुण-ग्राहक...श्रेष्ठ गुणी के आप आराधक...
लोक से पूजित 'कनक' वंदित...ये आचार्य हमारे...(5)...

सीपुर, दिनांक 16.12.2016, प्रातः 8.23

आचार्य स्तवन

मूल सृजेता-आचार्य कनकनन्दी
रूपान्तरण-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चाल : ज्योति कलश छलके.....)

ऊँचे-ऊँचे भाव/(लक्ष्य, गुण) हैं...आचार्य भगवन्त के...
सूरी गणी यति-पति...बहु गुणधारी हैं.../(जग से न्यारे हैं)...(ध्रुव)...

प्रज्ञाशाली शीलवंत...आगम पारगामी धैर्यवंत...
लोकज्ञता युत स्व-पर ज्ञाता...स्व-पर मत तात्कालीन ज्ञाता...
अलौकिक लक्ष्य...धारी गुरुवर...ऊँचे-ऊँचे...(1)...

प्रशस्तवान् व प्रशमवान्...नवीन-नवीन कल्पनावान्...
प्रश्न सह-पूर्व उत्तरवान्... पर मनोहारी अनिन्दक...
स्पष्ट-मिष्ट-हित...उपदेशी सूरीवर...ऊँचे-ऊँचे...(2)...

अनेकांती-उदारभावी...शिष्य अनुग्रह अनुशासनकारी...
पर उपकारी मार्गदर्शक...क्षमा-मृदुता-संयमधारी...

गंभीर व शांत...सौम्य मूर्ति प्रभुवर...ऊँचे-ऊँचे...(3)...

साधु-पाठक गुण-गणधारी...छत्तीस मूल गुणों के धारी...
शिक्षा-दीक्षा-प्रायश्चित्तदाता...चतुर्विध संघ अनुशास्ता...
स्व-पर-प्रकाशी...ज्ञानदाता गुणधर...ऊँचे-ऊँचे...(4)...

अपरस्त्रावी उपगूहनधारी...ईर्ष्या तृष्णा घृणा परिहारी...
गुणी-सेवित गुण ग्राहक...श्रेष्ठ गुणों के आप आराधक...
लोक से पूजित...'कनक'/(सुविज्ञ) वंदित...ऊँचे-ऊँचे...(5)...

सीपुर, दिनांक 19.12.2016, रात्रि 7.15

आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव की क्रांतिकारी ज्ञान-विज्ञान-दान प्रभावना

-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चाल : दे दी हमें आजादी.....)

सारे जहाँ को दे रहे..निरवद्य/(महान्) ज्ञानदान...
विश्व धरा के संत 'कनक'..कर दिया कमाल...

धर्म-दर्शन-विज्ञान की..सरिता बही महान्...
सरस्वती के पुत्र तूने..कर दिया कमाल...
जय-जय-जय आत्म/(ज्ञान) विज्ञान...(ध्रुव)...

पृथ्वी पे छेड़ी तूने गजब ढंग की क्रांति...
धर्म-दर्शन-विज्ञान तीनों समन्वयकारी...

सत्य-समता-शांति-सुख अमृतमयी...
देश-विदेश के विज्ञानी पा रहे हैं ज्ञान...विश्वधरा...(1)...

श्रीसंघ/(गुरुकुल) आपका मोबाईल विश्वविद्यालय...
बहुविधायी विषयों का शोध-बोध आलय...

स्वाध्याय संगोष्ठी चर्चा-वार्ता-अध्यापन...
नवीन-नवीन कल्पनाओं की जहाँ उड़ान...सरस्वती...(2)...

जो प्रश्न कहीं पर भी न सुलझ रहे हो...
न्याय-राजनीति या शिक्षा-विज्ञान हो...

प्राचीन से आधुनिक समस्त विधा हो...
समस्त विषयों का करते हो शीघ्र समाधान...विश्वधरा...(3)...

आपके वैज्ञानिक शिष्य बहु देशों में जा रहे...
आस्ट्रेलिया अमेरिका ब्रिटेन जा रहे...

विश्वविद्यालयों से ले विश्व धर्म संसद...
भारतीय ज्ञान-विज्ञान का कर रहे प्रचार/(प्रसार)...सरस्वती...(4)...

बिलग्रेड वॉरन बफे मार्क जुकरबर्ग...
देश-विदेशों के अनेक विज्ञानी दानीजन...

उन सबसे बढ़के आपका विशेष उपक्रम...
'सुविज्ञ' जन को दे रहे महान् ज्ञान-दान...विश्वधरा...(5)...

सीपुर, दिनांक 27.12.2016, मध्याह्न 1.05

आचार्य कनकनन्दी गुरु ज्ञान बाँटने आये

रचयित्री-छवि जैन (VIIIth)
पु. कॉलोनी, सागवाड़ा

कुंथु गुरु से संयम पाये, गुरु ज्ञान बाँटने आये।
निस्पृह/निराडम्बर रूप बनाये, गुरु ज्ञान बाँटने आये।।
''कनक गुरु'' महान् करे भव्यों का कल्याण।
गुरु चरणों में शीश झुकाये, गुरु ज्ञान बाँटने आये।। कुंथु गुरु से...
तेरी वाणी कल्याणी इसमें बसती जिनवाणी।
तुम में ज्ञान का सागर समाया, गुरु ज्ञान बाँटने आये।। कुंथु गुरु से...
तेरे शिष्य निराले भाग्य सबका सँवारे।
''कनकनन्दी'' को उनने पाया, गुरु ज्ञान बाँटने आये।। कुंथु गुरु से...
तेरी साधना निराली शांत छवि मनहारी।
तुमने शिवपुर पथ अपनाया, गुरु ज्ञान बाँटने आये।। कुंथु गुरु से...

परम निगेटिव से मैं परम पॉजिटिव की ओर विकास कर रहा हूँ!

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मेरा जीवन कोरा कागज.....)

मेरा जीवन कोरे कागज पर...इबारत लिख रहा...(भरीत हो रहा)...
/(मेरा जीवन पतित से पावन हो रहा...)
दीन-हीन-दंभ को छोड़ 'अहं'/(मैं) को चाह रहा...(ध्रुव)...

राग-द्वेष-मोह-काम से...अनंत दुःख सहा...2
अनात्म को आत्म माना...सत्य को न जाना/(माना)...2
भोग-उपभोग में ही...स्व को सुखी माना...मेरा जीवन...(1)...

जन्म-जरा-मरण को...मेरा मैं माना...2
तन-मन-अक्ष को मैं...मेरा रूप माना...2
मित्र को अपना माना...शत्रु को पराया...मेरा जीवन...(2)...

संकल्प-विकल्प-संक्लेश...अतः मैंने किया...2
आकर्षण-विकर्षण के...भँवर में घूमा...2
आत्म-उन्नति के विरोधी...बहु काम किया...मेरा जीवन...(3)...

इन्हीं कारणों से मेरा...जीवन पतित/(कोरा) रहा...2
आत्म श्रद्धान-ज्ञान-चरण से...पावन/(भरीत) हो रहा...2
सत्य-समता-शांति/(निस्पृह) से...'कनक' भर रहा...मेरा जीवन...(4)...

सीपुर, दिनांक 28.12.2016, प्रात 8.20

उपाध्याय-स्तुति

(ज्ञानदाता उपाध्याय की विशेषता)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : ऊँचे-ऊँचे शिखरों वाला.....)

श्रेष्ठ-ज्येष्ठ ज्ञान धारे हैं...उपाध्याय/(पाठक) हमारेऽऽ
उपाध्याय हमारे ये...जग से हैं न्यारे...(ध्रुव)...

प्रज्ञाशील-आगम पारगामी...पच्चीस मूल गुणधारी ज्ञानी...
उपलब्ध आगम व परमत ज्ञानी...तात्कालीन ज्ञान विज्ञान के धनी...
अध्ययनशील-अध्यापनकारी...साधु संघ के पाठक...।। (1)

दीक्षा व प्रायश्चित्त (द्वय) गुण रिक्त...अन्य सभी गुण सूरी सम प्रोक्त...
मिथ्या मत नाशक अनेकांत युक्त...वाग्मी गंभीरता व सौम्यता युक्त...
गमक समीक्षक शिष्य अनुग्राहक...स्पष्ट-हितोपदेशक...।। (2)

सूत्र-टीका व वार्तिक ज्ञायक...निश्चय-व्यवहार नय समन्वयक...
साधु गुणगण धारक आप पाठक...मोक्षमार्ग दर्शक निष्कलंक...
ख्याति पूजा लाभ रिक्त ज्ञानगुरु...तव भक्त सूरी 'कनक'...।। (3)

सीपुर, दिनांक 29.12.2016, संध्या 6.07

मिथ्या-वादि-मदोग्र-ध्वान्त-प्रध्वन्सि-वचन-संदर्भान्।
उपदेशकान् प्रपद्ये मम दुरितारि-प्रणाशाय।।4।। (पंचगुरु भक्ति)

भावार्थ-उपाध्याय परमेष्ठी स्व-समय-पर-समय के ज्ञाता, नित्य धर्मोपदेश में निरत रहते हैं उनके हित-मित-प्रिय प्रवचनों के प्रकरण को सुनते ही मिथ्यावादियों का मान गलित हो जाता है, अज्ञान अंधकार विलीन हो जाता है। ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी की शरण में मैं भी जाता हूँ। आपके चरण-कमलों के सम्पर्क से, शरणार्थी के पापों का क्षय हो।

ज्ञातादाता उपाध्याय की विशेषता

(रत्नत्रय से हीन उपाध्याय दीक्षा से बड़े साधु से भी वंदनीय)

वंदना नाम रत्नत्रयसमन्वितानां यतीनां आचार्योपाध्याय प्रवर्तकस्थविराणां गुणातिशयं विज्ञाय श्रद्धा पुरःसरेण अभ्युत्थान प्रयोग भेदेन द्विविधे विनये प्रवृत्तिः। (भगवती)

रत्नत्रय से सहित आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक और स्थविर मुनियों के गुणातिशय को जानकर श्रद्धापूर्वक अभ्युत्थान और प्रयोग के भेद से दो प्रकार की विनय में प्रवृत्ति को वंदना करते हैं।

संविग्नजनं प्रति क्रियमाणमभ्युत्थानं निर्जरा निमित्त विरति

स्थापनोपबृहंणकरणात्। वाचनामनुयोगं वा शिक्षयतः अवमरत्नत्रय-यस्याभ्युथातव्यं तन्मूलेऽध्ययनं कुर्वाद्भिः सवैरेव। वसतेः, कायभूमितः भिक्षातः, चैत्यात्, गुरुसकाशात्, ग्रामांतराद्वा आगमनकालेऽभ्युत्थातव्यं। गुरुजनश्च यदा निष्क्रामति निष्क्राम्य प्रविशति वा तदा तदा अभ्युत्थानं कार्य। अनया दिशा यथागममितरदप्युगंतव्यम्। (भगवती आ.भा.1 पृ. 154)

जो रत्नत्रय और तप में नित्य तत्पर रहते हैं उनके प्रति उठना चाहिए। जो सुखशील साधु हैं उनके सन्मान में उठना कर्मबंध का कारण है क्योंकि वह प्रमाद को बढ़ाने में कारण होता है, जो वाचना देता है अथवा अनुयोग का शिक्षण देता है वह अपने से रत्नत्रय में **न्यून भी हो तब भी उनके पास में सब अध्ययन करने वालों** को उनके सन्मान में उठकर खड़ा होना चाहिए। वसति से, कायभूमि से, भिक्षा से, जिन मंदिर से, गुरु के पास से अथवा ग्रामान्तर से आने के समय उठना चाहिए। जब-जब गुरुजन निकलते हैं अथवा निकलकर प्रवेश करते हैं तब-तब अभ्युत्थान करना चाहिए। इसी प्रकार आगम से अन्य भी जानना चाहिए।

श्रावकाणां सहस्त्रेभ्यो वरमेको ह्यणुव्रती।

अणुव्रती-सहस्त्रेभ्यो वरमेको महाव्रती।। (सम्यक्त्वकौमुदी पृ. 145 श्लो. 337)

हजारों श्रावकों की अपेक्षा एक अणुव्रतियों की अपेक्षा एक महाव्रती अच्छा है।

महाव्रति-सहस्त्रेभ्यो वरमेको जिनागमी।

जिनागमिसहस्त्रेभ्यो वरमेकः स्वतत्त्ववित्।।

हजारों महाव्रतियों की अपेक्षा एक जिनागम का ज्ञाता अच्छा है और हजारों जिनागम के ज्ञाताओं की अपेक्षा एक आत्म तत्त्व को जानने वाला अच्छा है।

स्वतत्त्ववित्सहस्त्रेभ्यो वरमेको दयान्वितः।

दयान्वितसमो यावन्न भूतो न भविष्यति।।

हजारों आत्म तत्त्व को जानने वालों की अपेक्षा एक दया सहित मनुष्य अच्छा है क्योंकि दया सहित मनुष्य के समान अन्य मनुष्य न हुआ है और न होगा।

विषयानुक्रमणिका

अ.क्र.	विषय	पृ.सं.
1.	आचार्य स्तुति	2
2.	आचार्य स्तवन	3
3.	आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव की ज्ञान-विज्ञान-दान-प्रभावना	4
4.	आचार्य कनकनन्दी गुरु ज्ञान बाँटने आये	5
5.	परम निगेटिव से मैं परम पॉजिटिव की और विकास कर रहा हूँ!	6
6.	उपाध्याय-स्तुति	6
	आत्मानुशासन	
1.	आत्म-विकास हेतु मेरे चतुः आयाम सूत्र	10
2.	आत्मशक्ति व उसके प्रभाव संबंधी मेरा अनुभव	13
3.	दान्त होते हैं संत व शांत	16
4.	संक्लेश भाव रूपी हिंसा व पाप त्याग करूँ	18
5.	परीषह-उपसर्ग पर बनूँ यथायोग्य विजयी	21
6.	निस्पृह अयाचक रहूँ : दान सेवा की अनुमोदना करूँ	27
7.	मेरा लक्ष्य/(उद्देश्य) : स्वात्मोपलब्धि रूप	37
8.	वैश्विक धर्म व शांति के उपाय	39
9.	वैयावृत्ति (सेवा-दान) जो नहीं करते वे धर्म बाह्य	52
10.	कब ये 'मम' तन विनाश होगा : स्वयं में लय होऊँगा	54
11.	मोही V/S निर्मोही	59
12.	गलती से नहीं सीखते अपितु गलती पर गलती करते 'इण्डियन'	64
13.	छोटी-सी भाव हिंसा भी बड़ी है-अशक्य अनुष्ठान की बड़ी हिंसा से	92
14.	अयोग्य नहीं मानते हैं हित-मित-प्रिय बातें	100
15.	कुप्रवृत्ति से दूर हेतु करूँ अशुद्ध भाव दूर	104
16.	मेरी (आ. कनकनन्दी) अनुशासन की मर्यादा	110
17.	जीवन तेरी अमृतधारा	120
18.	अनंत वैभववान् हूँ अतः सांसारिक क्षुद्र वैभव से निस्पृह (अनासक्त)	124
19.	सभी अनुशासन के मूल आत्मानुशासन	135
20.	वात्सल्य रत्नाकर...समाधि दिवस	141
21.	मुझे ऐसी सभ्यता नहीं चाहिए...!?	142
22.	वह शिक्षा मुझे नहीं चाहिए...!?	143
23.	दि. श्वे. जैनियों हेतु महत्ती सूचना	144

आत्मानुशासन

आत्म-विकास हेतु मेरे चतुः आयाम सूत्र

(आत्म-विकास हेतु करूँ मैं समता-निस्पृहता-मौन-एकांतवास)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : भातुकली....., सायोनारा.....)

समता हेतु मैं निस्पृह रहूँ...निस्पृह हेतु मैं मौन रहूँ...
मौन हेतु मेरा एकांतवास...सबका हेतु मेरा आत्म-विकास...(स्थायी)...

आत्म विकास मेरा परम ध्येय...इसी हेतु ही करूँ (मैं) स्वाध्याय...
स्व-अध्ययन हेतु करूँ स्वाध्याय...स्व-पर भेद-विज्ञान स्वाध्याय...

मैं हूँ सच्चिदानंद अमूर्त रूप...अनंत ज्ञान दर्शनमय स्व-स्वरूप...
इससे भिन्न सभी पर स्वरूप...सचित्त-अचित्त-मिश्र पर स्वरूप...(1)...

स्व-स्वरूप होता है समता रूप...मोह-क्षोभ विहीन आत्म स्वरूप...
क्रोध-मान-माया-लोभ रहित...ख्याति-पूजा-लाभ-द्वंद्व रहित...

पर स्वरूप त्याग हेतु रहूँ निस्पृह...मोह से लेकर ख्याति पूजादि त्याग...
सचित्त आदि चौबीस परिग्रह त्याग...धन-जन-मान-वर्चस्व त्याग...(2)...

इसी हेतु मौन साधना करूँ...पञ्चविध स्वाध्याय हेतु ही बोलूँ...
गुण-गुणी प्रशंसा अनुमोदना करूँ...परचिन्ता-निन्दा-विकथा त्यागूँ..

इस हेतु करूँ मैं एकांत निवास...ग्राम व जंगल में करूँ निवास...
स्वच्छ-शांत-प्रदूषण रहित...भ्रमण व शौच योग्य स्थान विशेष...(3)...

इससे मिल रही शांति व तृप्ति...आत्मविशुद्धि सह आत्म उन्नति...
शोध-बोध प्रयोग में वृद्धि हो रही...कल्पना-विश्लेषणों में वृद्धि हो रही...

तन-मन-आत्मा स्वस्थ्य हो रहे...स्व-स्वरूप में व्यस्त-मस्त हो रहा हूँ...
अस्त-व्यस्त-संत्रस्त दूर हो रहे...सच्चिदानंद बनना 'कनक' लक्ष्य...(4)...

सीपुर, दिनांक 17.12.2016, प्रातः 5.55 से 6.40

संदर्भ-

जनेभ्यो वाक् ततःस्पन्दो मनसश्चित्तविभ्रमाः।

भवन्ति तस्मात्संसर्गं जनैर्योगी ततस्त्यजेत्।। (72)

भावार्थ-आत्मस्वरूप में स्थिरता के इच्छुक मुमुक्षु पुरुषों को चाहिए कि वे लौकिक जनों के संसर्ग से अपने को प्रायः अलग रखें, क्योंकि लौकिक जन जहाँ जमा होते हैं वहाँ वे परस्पर में कुछ-न-कुछ बातचीत किया करते हैं, बोलते हैं और शोर तक मचाते हैं। उनकी इस वचनवृत्ति के श्रवण से चित्त चलायमान होता है और उसमें नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प उठने लगते हैं, जो आत्मस्वरूप की स्थिरता में बाधक होते हैं-आत्मा को अपना अंतिम ध्येय सिद्ध करने नहीं देते।

ग्रामोऽरण्यमिति द्वेधा निवासोऽनात्मदर्शिनाम्।

दृष्टात्मनां निवासस्तु विविक्तात्मैव निश्चलः।। (73)

स्वप्नेन्द्राजालवत्पश्य दिनानी त्रीणि पंच वा।

मित्रक्षेत्रधनागारदारदायादिसम्पदः।। (2)

इस प्रकार शिष्य शंका करता है कि-स्त्री, पुत्रादि और अनेक प्रकार के सुख देने वाले जो कर्म उनका किस प्रकार त्याग हो सकता है? तब गुरु कहते हैं कि हे शिष्य! तीन अथवा पाँच दिन रहने वाले मित्र, क्षेत्र, धन, स्थान, स्त्री और कुटुम्ब आदि संपत्तियों को स्वप्न और इंद्रजाल के समान अनित्य जान।

यत्रयत्र भवेतृष्णा संसारं विद्धि तत्र वै।

प्रौढवैराग्यमाश्रित्य वीततृष्णः सुखी भव।। (3)

अब यह वर्णन करते हैं कि, संपूर्ण काम्य कर्मों में अनादर करना रूप वैराग्य ही मोक्ष रूप पुरुषार्थ का कारण है, जहाँ-जहाँ विषयों की विशेष तृष्णा होती है वहाँ ही संसार जान, क्योंकि विषयों की तृष्णा ही कर्मों के द्वारा संसार का हेतु होती, इस कारण दृढ़ वैराग्य का अवलंबन करके अप्राप्त विषयों में इच्छा रहित होकर आत्मज्ञान की निष्ठा करके सुखी हो।

तृष्णामात्रात्म को बन्धस्तन्नाशोमोक्षउच्यते।

भवसंसक्तिमात्रेण प्राप्ति तुष्टिर्मुहुर्मुहः।। (4)

उपरोक्त विषय को अन्य रीति से कहते हैं-हे शिष्य! तृष्णा मात्र ही बड़ा भारी

बंधन है और उस तृष्णा मात्र का त्याग ही मोक्ष कहलाता है, क्योंकि संसार के पीछे आसक्ति का त्याग करके बारंबार आत्म ज्ञान से उत्पन्न हुआ संतोष ही मोक्ष कहलाता है।

निशामयति निश्शेषमिन्द्रजोलोपमं जगत्।

स्पृहयत्यात्मलाभाय, गत्वान्यत्रानुतप्यते।। (39)

The seeker of the self regards the whole world as a product of illusion and is moved by the desire at atting to self-realigation. If he ever becomes entangled in anything else he repents of it!

योगी शब्द अन्तः दीपक होने के कारण उसे सर्वत्र जोड़ना चाहिये। जो स्व-आत्म संवित्ति के रसिक/ध्याता है, वह सम्पूर्ण चराचर बाह्य वस्तु को उपेक्षा रूप से देखता है। उसे हेय, उपादेय, गृहणीय एवं तजनीय का ज्ञान होने के कारण इन्द्रजालियाँ (जादुगर) के द्वारा प्रदर्शित सर्प व हार के समान समस्त सांसारिक वस्तु प्रतिभाषित होती है। इसलिए वह संसार को इन्द्रजाल के समान अवास्तविक मानकर चिदानन्द स्वरूप स्व आत्म संवित्ति को चाहता है तथा स्वआत्मा से अतिरिक्त किसी वस्तु में स्व चित्त की प्रवृत्ति पूर्व संस्कार वश हो जाती है तब वह पश्चाताप करता है। वह दुःखी होकर सोचता है कि हाय मेरे से यह अनात्म कार्य कैसे हो गया।

इच्छत्येकान्तसंवासं, निर्जनं जनितादरः।

निजकार्यवशात्किञ्चिदुक्त्वा विस्मरति द्रुतम्।। (40)

The Seeker after the self longs for solitude, prefering disraciation with men; if he has to speak to men for a purpose of his own, he puts it out of his mind as soon as it is said!

''गुरुपदेशमासाद्य, समभ्यस्यत्रानारतम्।

धारवासौष्ठवाध्यान प्रत्ययानपि पश्यति।।''

आत्म-साधक आत्म साधना के लिए स्वभाव से निर्जन गिरि, गुहा आदि में गुरु आदि के साथ रहने की अभिलाषा करता है और वहाँ भी रहकर जन-मनोरंजन कार्य, चमत्कार पूर्ण मन्त्रादि प्रयोग तथा अनावश्यक वार्तालाप से निवृत्त होने का प्रयत्न करता है। सामान्य जन स्वार्थवशात् संसारी लाभ-अलाभ सम्बन्धी प्रश्न करते हैं जिससे साधक को साधना में बाधा पहुँचती है। इसीलिये जनसम्पर्क से रहित एकान्त में साधना के लिये कहा गया है। लौकिक चमत्कार ध्यान के लिये, आत्म साधना के लिये बाधक है। तत्त्वानुशासन में भी कहा है-

गुरु के उपदेशानुसार सतत आत्मस्वरूप का अभ्यास करने वाला ध्यानी धारणा, सौष्ठव आदि ध्यान के प्रतियों का साक्षात् प्रतिरक्षण करने लगता है अर्थात् जिस समय आत्मलीनता होती है उस समय ज्ञान की प्रकृष्ठता के कारण उसे संसार का कोई भी पदार्थ अदृश्य प्रतीत नहीं होता है वह अपने आत्मानन्द में स्थिर रहता है।

समीक्षा- प्राथमिक साधक के मन की चंचलता के लिये बाह्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भी निमित्त बनते हैं। उन बाह्य निमित्तों से निवृत्त होने पर तज्जन्य चंचलता भी दूर होती है। कहा भी है-

विकीर्यते मनः सद्यः स्थानदोषेण देहिनाम्।
तदेव स्वस्थतां धत्ते स्थानमासाद्य बन्धुकरम्।। (22)

स्थान के दोष से प्राणियों का मन शीघ्र ही विकार को प्राप्त होता है तथा वही मन रमणीय स्थान को पाकर स्वस्थता को धारण करता है। राग-द्वेष से रहित होकर आत्मस्वरूप में अवस्थित होता है।

चार आयाम-द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को समझे बिना अनेकान्त को नहीं समझा जा सकता है, और सत्य को भी नहीं समझा जा सकता। वस्तु की सही व्याख्या नहीं की जा सकती। मन पर क्षेत्र का भी प्रभाव पड़ता है और काल का भी प्रभाव पड़ता है।

आत्मशक्ति व उसके प्रभाव संबंधी मेरा अनुभव

(स्व-आत्मशक्ति संवर्द्धन-परिणाम)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की....., सायोनारा.....)

कृतकारित व अनुमत से...मन वचन व काय से।
स्व-पर उपकार (के) भाव करूँ...स्व-उपकार ही पहले करूँ।।

आत्मविशुद्धि व समता धरूँ...सत्य की खोज मैं सतत करूँ।
राग द्वेष व मोह से परे...आत्मा की खोज मैं सतत करूँ।।

ईर्ष्या तृष्णा घृणा परे...दीन-हीन व दंभ परे।
संकीर्ण मत-पंथ सीमा परे...अनंत सत्य की खोज करूँ।।

अपना-पराया न भेद करूँ...शत्रु-मित्र का न भाव धरूँ।

धनी-गरीब भेदभाव (काला-गोरा) परे...'सव्वे सुद्धा हु सुद्ध णया' मानूँ।।

ख्याति पूजा (व) लाभ न चाहूँ...प्रसिद्धि-वर्चस्व-नाम न चाहूँ।
भीड़-प्रदर्शन व ढोंग परे...श्रद्धा-प्रज्ञा व चर्या चाहूँ।।

निस्पृह-निराडम्बर व मौन चाहूँ...आत्मसाधना में लीन रहूँ।
एकांत-शांत-प्रदूषण रिक्त...ग्राम जंगल में ध्यान करूँ।।

विश्व-कल्याण का भाव धरूँ...स्वयं का कर्त्ता ही स्वयं बनूँ।
स्व-आत्मिक शक्ति बढ़ाता चलूँ...सरल-सहज-पावन बनूँ।।

शोध-बोध व प्रयोग द्वारा...अनुभव परीक्षण स्वयं में करूँ।
कार्य-कारण व परिणाम से...स्व-आत्मशक्ति का प्रभाव जानूँ।।

अद्यतन मेरे अनुभवों से...आत्मशक्ति का प्रभाव जाना।
आत्मशक्ति है श्रेष्ठतम शक्ति...इससे परे कोई न शक्ति जाना।।

निर्द्वंद्व-निराकुल-शांतिप्रद...श्रद्धा-प्रज्ञा व धैर्यप्रद।
सरल-सहज व साम्यप्रद...संकट निवारक अभयप्रद।।

आत्मशक्ति जब है मोक्षप्रद...अन्य लाभ सभी आनुसंगिक।
मोक्ष प्राप्ति यथायोग्य (अभी) करूँ...पूर्ण संभव नहीं तो आंशिक करूँ।।

स्व-स्मरण व ध्यान-अध्ययन...आत्म विश्लेषण व आत्मशोधन।
पर-परिणति से यथायोग्य विरमण...उतने अंश न होता बंधन।।

अनुभवजन्य मेरा ये (सब) ज्ञान...आत्मशक्ति में अतः दृढ़ श्रद्धान।
आत्म विकास का मेरा पैमाना/(कारण)...'कनक' का लक्ष्य अनुभवगम्य।।

सीपुर, दिनांक 15.12.2016, रात्रि 8.03

संदर्भ-

प्राज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदयः प्रव्यक्तलोकस्थितिः।
प्रास्ताशः प्रतिभापरः प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तरः।।
प्रायः प्रश्नसहः प्रभुः परमनोहारी परानिन्दया।
ब्रूयाद्धर्मकथां गणी गुणनिधिः प्रस्पष्टमिष्टाक्षरः।। (5) आ.पृ.4

जो त्रिकालवर्ती पदार्थों को विषय करने वाली प्रज्ञा से सहित हैं, समस्त शरीर

के रहस्य को जान चुका है, लोकव्यवहार से परिचित है, अर्थलाभ और पूजा प्रतिष्ठा आदि की इच्छा से रहित है, नवीन-नवीन कल्पना की शक्ति रूप अथवा शीघ्र उत्तर देने की योग्यता रूप उत्कृष्ट प्रतिभा से सम्पन्न है, शांत है प्रश्न करने के पूर्व में ही प्रश्न उपस्थित होने की संभावना से उसके उत्तर को देख चुका है, प्रायः अनेक प्रश्न के प्रश्नों के उपस्थित होने पर उनको सहन करने वाला है अर्थात् न तो उनसे घबराता है और न ही उत्तेजित होता है, श्रोताओं के ऊपर प्रभाव डालने वाला है, उनके चित्त को आकर्षित करने वाला अथवा उनके मनोगत भाव को जानने वाला है, तथा उत्तमोत्तम अनेक गुणों का स्थानभूत है, ऐसा संघ का स्वामी आचार्य दूसरों की निन्दा न करके स्पष्ट एवं मधुर शब्दों में धर्मोपदेश देने का अधिकारी होता है।

श्रुतमविकलं शुद्धा वृत्तिः परप्रतिबोधने।
परणतिरूरूद्योगो मार्गप्रवर्तनसद्विधौ।।
बुधनुतिरनुत्सेको लोकज्ञता मदुताऽस्पृहा।
यतिपतिगुणा यस्मिन्नन्ये च सोऽस्तु गुरुः सताम्।। (6)

जिसके परिपूर्ण श्रुत है अर्थात् जो समस्त सिद्धांत का जानकार है, जिसका चरित्र तथा मन, वचन व काय की प्रवृत्ति पवित्र है, जो दूसरों को प्रतिबोधित करने में प्रवीण है, मोक्षमार्ग के प्रचार रूप समाचीन कार्य में अतिशय प्रयत्नशील है, जिसकी अन्य विद्वान् स्तुति करते हैं तथा जो स्वयं भी विशिष्ट विद्वानों की प्रशंसा एवं उन्हें नमस्कार आदि करते हैं, जो अभिमान से रहित हैं, लोक और लोकमर्यादाओं के जानकार हैं, सरल परिणामी हैं, इस लोकसंबंधी इच्छाओं से रहित हैं, तथा जिसमें और भी आचार्य पद के योग्य गुण विद्यमान है, वही हेयोपादेय विवेकज्ञान के अभिलाषी शिष्यों का गुरु हो सकता है।

देशं कालं तथा क्षेत्रं भावं पात्रं विविच्य यः।
समयाचारमाचारादेशकः स गुरुः सताम्।। (113)

देश, काल, भाव, क्षेत्र और पात्र (जिनको व्रत दिये जाते हैं) तथा आगम में कहा हुआ आचार इन सब बातों का योग्य विचार करके आचार का उपदेश करने वाले यतीश्वर सज्जनों के गुरु हैं।

दान्त होते हैं संत व शांत

(सुख एवं दुःख प्राप्ति के सूत्र)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : क्या मिलिये ऐसे लोगों से....., तुम दिल की....., सायोनारा.....)

जो होते दान्त वे होते हैं संत, जो होते संत वे होते हैं शांत।
शांति से मिलता है उन्हें आत्मानंद, जिससे कर्मबंध होता (है) अंत।। (1)

पंच महाव्रत युक्त होते हैं संत, अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्म असंग्रह।
क्रोध मान माया लोभादि की पीड़ा अंत, ज्ञान-वैराग्य से उनके राग अंत।। (2)

इससे उन्हें मिलता है परिमोक्ष, अनंतज्ञान दर्शन वीर्यादि सुख।
जन्म जरा रोग मरणादि भी अंत, जिससे वे बनते शाश्वत शांत।। (3)

इससे विपरीत जो न होते दान्त, वे न पालते है पंच महाव्रत।
कषाय पीड़ा उनकी न होती शांत, ज्ञान-वैराग्य से न करते राग अंत।। (4)

जिससे वे होते अस्त-व्यस्त-संत्रस्त, कर्मबंध उनका होता है सतत।
संसार में पाते हैं दुःख-संतप्त, भोगोपभोगादि से भी न होते संतृप्त।। (5)

आत्मा का शुद्ध स्वभाव अनंत सुख, अशुद्धता के कारण जीव पाते दुःख।
अशुद्धता के कारण पंचपाप चतुःकषाय, भोगोपभोग आदि में आसक्त भाव।। (6)

यह सुख-दुःख का सूत्रात्मक कथन, सुख प्राप्ति हेतु ही पालनीय धर्म।
इसका शोध-बोध कर रहा विज्ञान, दान्त-शांत हेतु 'कनक' प्रयत्नवान्।। (7)

सीपुर, दिनांक 19.12.2016, रात्रि 7.50

संदर्भ-

पंचमहव्वयजुत्तो णिग्गहिदकसायवेदणो दंतो।
लब्भदि हु पत्तभूदो णाणासुदरयणणिधिभूदो।। (321)

वैयावृत्य करने से पाँच महाव्रतों के द्वारा कर्मों के आस्रव को रोकने वाला, कषाय वेदना का निग्रह करने वाला, कषाय आत्मा को संतप्त करती है इसे वेदना कहा है, दान्त अर्थात् जिसके रागजन्य दोष शांत हो गये हैं, वस्तु तत्त्व को जानने से वैराग्य भावना होती है और वैराग्य भावना से राग शांत होता है, इससे दंत कहा है

तथा जो नाना प्रकार के शास्त्रों रूपी रत्नों का निधि है, नाना शास्त्रों का ज्ञाता है ऐसा पात्र प्राप्त होता है अर्थात् वैयावृत्य करने वाले को वैयावृत्य के लिए ऐसे सत्पात्र मुनि प्राप्त होते हैं यह एक महान् लाभ है।

योग के सेवन से अंकुश में आया हुआ मन जहाँ शांति पाता है, आत्मा से ही आत्मा को पहचानकर आत्मा में जहाँ मन संतोष पाता है और इन्द्रियों से परे और बुद्धि से ग्रहण करने योग्य अनंत सुख का जहाँ अनुभव होता है, जहाँ रहकर मनुष्य मूल वस्तु से चलायमान नहीं होता और जिसे पाने पर दूसरे किसी लाभ को वह उससे अधिक नहीं मानता और जिसमें स्थिर हुआ महादुःख से भी डगमगाता नहीं, उस दुःख के प्रसंग से रहित स्थिति का नाम योग की स्थिति समझना चाहिए। यह योग ऊबे बिना दृढ़तापूर्वक साधने योग्य है।

प्रशान्तमनस ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शांत रजसं ब्रह्मयूतकल्मषम्।।

जिसका मन भली-भाँति शांत हुआ है जिसके विकार शांत हो गये हैं, ऐसा ब्रह्ममय हुआ निष्पाप योगी अवश्य उत्तम सुख प्राप्त करता है।

युञ्जन्नेव सदात्मानं योगी विगत कल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमनन्तं सुखमश्नुते।।

आत्मा के साथ निरंतर अनुसंधान करते हुए पाप रहित हुआ यह योगी सरलता से ब्रह्म प्राप्ति रूप अनंत सुख का अनुभव करता है।

आत्मानंद से कर्म-नष्ट

आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेन्धनमनारतम्।
न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्यचेतनः।। (48)

Self produced happiness is constant by burning up the karmic fuel in large quantities, while the yogi, indifferent to the external pain, is no affected by it in the least!

वह आत्मानंद प्रवाह रूप से आने वाली प्रचुर कर्म संतति को निर्दहन कर देता है जिस प्रकार अग्नि ईंधन को भस्म कर देती है। ऐसा आनंद से सम्पन्न योगी परीषह, उपसर्ग क्लेशादि बाह्य दुःख को अनुभव नहीं करता है; इसलिए वह उससे संक्लेश को प्राप्त नहीं होता है, खेद को प्राप्त नहीं होता है।

समीक्षा-जब आत्मा स्व-आत्मा में ही स्थिर हो जाता है, रम जाता है, लीन हो जाता है तब स्वयं में अनंत अक्षय आनंद का अनुभव करता है। अरिहंत, सिद्ध भगवान् पूर्णतः स्व-आत्मा में स्थिर होने के कारण वे संपूर्ण दुःखों से रहित अक्षय अनंत आत्मोत्थ सुख का अनुभव करते हैं। सिद्ध भगवान् समस्त द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नो कर्म अथवा घातिया कर्म, अघातिया कर्म नष्ट करके स्वयं में पूर्ण निस्पन्द रूप से लीन होने के कारण अनंत सुख का अनुभव करते हैं तथा अरिहंत भगवान् घातिया कर्म को नष्ट करने के कारण अनंत सुख को अनुभव करते हैं। घातिया कर्म के अभाव से मोह, राग, द्वेष, तृष्णादि क्षय हो जाते हैं तथा अनंत सुख, वीर्य, ज्ञान दर्शन प्राप्त कर लेते हैं जिसके कारण वे शरीर संबंधी या पुण्य-पाप संबंधी या समवसरण संबंधी किसी भी प्रकार के सुख-दुःख वेदन नहीं करते है।

संक्लेश भाव रूपी हिंसा व पाप त्याग करूँ

(पाप-पुण्य-मोक्ष का आध्यात्मिक रहस्य)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे....., सायोनारा.....)

'कनक' तू 'संक्लेश भाव' त्यागोऽऽ
संक्लेश भाव ही पापबंध कारकऽऽ शुभ से तू विशुद्ध बनोऽऽ...(ध्रुव)

संक्लेश भाव से पापबंध तोऽऽ शुभ से होता पुण्य बंधऽऽ
'विशुद्ध भाव' से होता परिनिर्वाणऽऽ भाव को शुभ से विशुद्ध करऽऽ
समता-शांति से विचार करऽऽऽ...'कनक'...(1)

राग द्वेष मोह काम क्रोध मदऽऽ ईर्ष्या तृष्णा वैर विरोधऽऽ
ख्याति पूजा लाभ वर्चस्व द्वंद्वऽऽ परनिन्दा अपमान अहित भावऽऽ
तनाव भय चिन्ता (है) संक्लेशऽऽ ये ही पापबंध कारक अधर्मऽऽऽ...'कनक'...(2)

संक्लेश युक्त बाह्य धर्म-कर्म सेऽऽ न होते शुभ व शुद्ध भावऽऽ
जिससे न होता है यथार्थ धर्मऽऽ न होता पाप क्षय व पुण्य बंधऽऽ
न होता स्व-पर भी उपकारऽऽऽ...'कनक'...(3)

जितने अंश में संक्लेश होता दूरऽऽ उतने अंश में होता शुभ भावऽऽ

उतने अंश में होता धर्माचरणऽऽ उतने अंश में होता पुण्य बंधऽऽ
होता स्व-पर भी उपकारऽऽ विशुद्ध भाव हेतु बनता आधारऽऽऽ...'कनक'...(4)

विशुद्ध परिणाम से होता परिनिर्वाणऽऽ पुण्य-पापादि सर्वकर्म क्षय सेऽऽ
ध्यान-अध्ययन-तप-त्यागादि करोऽऽ संक्लेश परिणाम रहित सेऽऽ
'कनक' भाव विशुद्धि सदा करऽऽ आत्मविकास हेतु सूत्रसारऽऽऽ...'कनक'...(5)

पर निमित्त या धर्म के बहाने भीऽऽ न करो तू संक्लेश परिणामऽऽ
ख्याति पूजा लाभ भीड़ वर्चस्व हेतुऽऽ शत्रु-मित्र या धन-जनऽऽ
संक्लेश से आत्म पतन न करऽऽ आत्महित का ध्यान सदा करऽऽऽ...'कनक'...(6)

सीपुर, दिनांक 21.12.2016, रात्रि 8.10

संदर्भ-

जीवन्तु वा म्रियन्ता वा प्राणिनोऽमी स्वकर्मतः।
स्वं विशुद्ध मनोऽहिंसन् हिंसक पापभाग् भवेत्।। (253)
शुद्ध मार्ग मतोद्योगः शुद्ध चेतो वचो वपुः।
शुद्धान्तरात्म संपन्नो हिंसकोऽपि न हिसकः।। (254) अ.6, भाग-2

ये प्राणी अपने-अपने कर्म के उदय से जीये या मरे, किन्तु जो मानव अपना मन विशुद्ध कषाय रहित करता है वह अहिंसक है जो और अपने मन को अशुद्ध कषाय युक्त करता है वह हिंसक और पापी है। जो शुद्ध मार्ग (सदाचार) में प्रयत्नशील है, जिसका मन, वचन व काय शुद्ध है एवं जिसकी अंतरात्मा शुद्ध (कषाय भाव से कलुषित नहीं) है वह हिंसा करके भी हिंसक नहीं है।

सुखदुःखा विधातापि भवेत्पाप समाश्रयः।
पटो मध्य विनिक्षिप्तं वासः स्यान्मलिनं न किम्।। (256)

चंचल मन वाला प्राणी दूसरों को सुख-दुःख न देता हुआ भी पाप बंध करने वाला हो जाता है। क्या कपड़े की मञ्जुषा में रखा हुआ वस्त्र मलिन नहीं होता? अर्थात् वैसे ही भोगों की ओर दौड़ता हुआ मन भी क्या अशुभ ध्यान के कारण मलिन होकर पाप बंध करने वाला नहीं होता है? अवश्य होता है।

पुण्यायापि भवेद् दुखं पापायापि भवेत्सुखम्।
स्वस्मिन्नन्यत्र वा नीतमचित्रयं चित्त चेष्टितम्।। (255)

स्वयं को व दूसरों को दुःख देने से भी पुण्य कर्म का बंध होता है और सुख देने से भी पाप कर्म का बंध होता है, क्योंकि मन की चेष्टाएँ चिंतवन के लिए अशक्य हैं। अभिप्राय यह है कि यदि तपश्चर्या व कष्ट सहन शुभ परिणामों से यथाविधि करे जाते है तो उससे पुण्य कर्म का बंध होता है परन्तु यदि अशुभ परिणामों से किये जाते है तो उनसे पाप बंध ही होगा। इसी तरह शुभ परिणामों से युक्त जीवों द्वारा दूसरों को दुःख से भी पुण्य बंध होता है, क्योंकि मन की चेष्टाएँ अचिन्त्य होती हैं।

बहिष्कार्यासमर्थेऽपि हृदि हृद्येव स संस्थिते।
परं पापं परं पुण्यं परमं च पदं भवेत्।। (255)

शरीर आदि में हिंसा व परोपकार आदि अशुद्ध व शुद्ध कार्य करने में असमर्थ होने पर भी यदि चित्त, पाप में लीन रहता है तो (चित्त) वह अशुभ ध्यान द्वारा तीव्रतम पापबंध करता है।

समंतभद्राचार्य ने कहा भी है कि-

पापं ध्रुवं परे दुखात् पुण्यं च सुखतो यदि।
अचेतनाऽकषायौ च बध्येयातां निमित्ततः।। अ.9 गा.92 (आप्त मीमांसा)

कुछ लोगों की मान्यता है कि दूसरे प्राणी को दुःख देने से पाप बंध ही होता है और सुख देने से पुण्य बंध होता है। परन्तु उक्त मान्यता सही नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने से तो विष और शस्त्रादि दूसरों को दुःख देने में निमित्त हैं उन्हें पाप बंध होना चाहिए एवं कषाय रहित वीतराग दूसरे को सुख देने में निमित्त है उसे पुण्य बंध का प्रसंग हो जायेगा तो मुक्ति संघटित नहीं होगी। लोक में ऑपरेशन करने वाला वैद्य भी बीमार को कष्ट देने में निमित्त है तो उसे भी पाप बंध का प्रसंग हो जायेगा।

पुण्यं ध्रुवं स्वतो दुःखात् पापं च सुखतो यदि।
वीतरागो मुनिर्विद्वांस्ताभ्यां युञ्ज्यान्निमित्तत।। (93)

कुछ लोगों की मान्यता है कि अपने को दुःख देने से पुण्य बंध होता है और सुख देने से पाप बंध होता है, परन्तु उक्त मान्यता सही नहीं है क्योंकि ऐसा मानने से तो विष व शस्त्रादि दूसरों को दुःख देने में निमित्त है उन्हें पापबंध होना चाहिए एवं कषाय रहित वीतराग दूसरे को सुख देने में निमित्त है उसे पुण्य का प्रसंग हो जायेगा तो मुक्ति संघटित नहीं होगी। लोक में ऑपरेशन करने वाला वैद्य भी बीमारी को कष्ट देने में निमित्त है, तो उसे भी पाप का प्रसंग हो जायेगा।

विशुद्धि संक्लेशाङ्गं चेत् स्वपरस्थं सुखासुखं।
पुण्य पापास्रवो युक्तौ न चैद्व्यर्थस्तवार्हतः।। (3)

पुण्य पाप बंध की व्यवस्था हमारे विशुद्ध व संक्लिष्ट परिणामों पर अवलम्बित है, इससे अपने लिए या दूसरों के लिए दिये हुए सुख व दुःख यदि क्रमशः शुभ परिणाम व अशुभ परिणामपूर्वक है तब पुण्य बंध और पाप बंध होता है। अर्थात् यदि हम दूसरे प्राणी को कषायवश दुःख देते हैं तो हमें पाप बंध ही होगा और यदि हम शुभ परिणामों से दूसरों को सुख देते हैं तो हमें पुण्य बंध ही होगा, यदि ऐसा नहीं है तो आपके मन में पुण्यास्रव और पापास्रव निष्फल है।

परीषह-उपसर्ग पर बनूँ यथायोग्य विजयी

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे....., सायोनारा.....)

आत्मन्! तू स्व विजयी बनोऽऽ
आत्म विजयी ही विश्व विजयी हैऽऽ शुद्ध-बुद्ध-आनंद बनोऽऽ...(ध्रुव)

परीषह जय करो आत्म संयम सेऽऽ धैर्य व समता-शांति सेऽऽ
इससे आत्मशक्ति व विशुद्धि बढ़ेगीऽऽ कर्मशत्रु सभी होंगे चकनाचूरऽऽ
बनोगे अरिहंत स्व ईश्वरऽऽ...आत्मन्...(1)

मान अपमान व आदर-सत्कार (से)ऽऽ लाभ-अलाभ व याचना-आक्रोशऽऽ
प्रज्ञा-अज्ञान व अदर्शन-अरतिऽऽ परीषह व उपसर्ग को करो पराजयऽऽ
जिससे होंगे कर्मशत्रु पराजयऽऽ...आत्मन्...(2)

मोह-क्षोभ संक्लेश-चिन्ता परेऽऽ सेवन करो उत्तम क्षमादि दश धर्मऽऽ
निस्पृह-निराडम्बर व निर्द्वंद्व बनोऽऽ शत्रु-मित्रादि से न करो राग-द्वेषऽऽ
बनोगे वीर्यवान् व अपराजयी/(विश्व विजयी)ऽऽ...आत्मन्...(3)

तीर्थंकर मुनि भी जो पूर्व में चक्रीऽऽ अथवा जिनके पुत्र हो चक्रवर्तीऽऽ
चौसठ ऋद्धि सम्पन्न होने पर भीऽऽ समता से बनते वे परीषहजयीऽऽ
ऋद्धियों का भी न करते प्रयोगऽऽ...आत्मन्...(4)

इसी से वे सर्वकर्म नाशकरऽऽ बनते अरिहंत व सिद्ध-बुद्धऽऽ
अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्य के स्वामीऽऽ प्रभु-विभु परमेश्वर अमरऽऽ

सच्चिदानंद विश्वेश्वरऽऽ...आत्मन्...(5)

उनसे शिक्षा लो वे तेरे आदर्शऽऽ उनके गुण को करो स्मरण-आचरणऽऽ
पूर्व संभव न तो यथायोग्य करऽऽ शक्तिस्तः तप-त्याग आचरणऽऽ
आचरण से बढ़ेंगे गुणगणऽऽ 'कनक' स्व-आत्मगुण स्मरणऽऽ...आत्मन्...(6)

स्व-उपार्जित पूर्व कर्म उदय सेऽऽ होते परीषह-उपसर्ग मानकरऽऽ
समता से उसे सहन करऽऽ जिससे पूर्वकर्म होंगे दूरऽऽ
मुक्ति होने का परम उपायऽऽ विजयी होने का परम सूत्रऽऽ...आत्मन्...(7)

सीपुर, दिनांक 22.12.2016, प्रातः 7.05 व 7.42

संदर्भ-

परीषहाद्यविज्ञानादास्रवस्य निरोधिनी।
जायतेऽध्यात्मयोगेन, कर्मणामाशु निर्जरा।। (24)

By bearing with equanimity, by the power of the soulforce, the trials and hardships consequent on world renunciation, is accomplished speedily the destruction of karmas and the stoppage of further inflow there of!

''यस्य पुण्यं च पापं च निष्फलं गलति स्वयम्।
स योगी तस्य निर्वाणं न तस्य पुनरास्त्रवः।।'' आत्मानुशासनम्
''तथा ह्याचरमाङ्गस्य ध्यानमभ्यस्यतः सदा।
निर्जरा संवरश्चास्य सकलाशुभकर्मणाम्।।'' तत्त्वानुशासनम्
''आत्मदेहान्तरज्ञान जनिताल्हादनिर्वृतः।
तपसा दुःष्कृतं घोरं भुंजानोऽपि न खिद्यते।।'' समाधिशतकम्
''सीलेसिं संपतौ, णिरूद्धणिस्सेसआसवो जीवो।
कम्मरय विप्पमुक्को, गय जोगो केवलि होदि।।'' गोम्मट्टसार जीवकाण्ड
''श्रूयतां चास्यैवार्थस्य संग्रह श्लोकः।।'' (24)

यहाँ पर पुनः शिष्य प्रश्न करता है कि हे गुरुदेव! जो ज्ञानी निष्पन्न योगी अध्यात्म में स्थित है उसे आत्मध्यान से क्या फल मिलता है? गुरु उत्तर देते हैं कि-

जो योगी क्षुधादि परीषह तथा देवादि उपसर्गरूपी बाधाओं को आध्यात्मिक योग में लीन होकर वेदन नहीं करता है उसके एक देश क्षयरूप पापकर्म की निर्जरा होती

है। इतना ही नहीं, सिद्धयोग की अपेक्षा अशुभ एवं शुभ कर्म की निर्जरा होती है तथा साध्य योग की अपेक्षा अशुभ कर्म की निर्जरा होती है। इसके साथ-साथ आस्रव का भी निरोध होता है। कहा भी है-

जिसके पुण्य एवं पाप निष्फल रूप से स्वयं गलित हो जाते हैं वे योगी हैं उनको निर्वाण सुख मिलता है उनको पुनः कर्मास्रव नहीं होता है।

तत्त्वानुशासन रूपी ध्यान ग्रंथ में और भी कहा है-

जो अचरम शरीर योगी हैं, ध्यान का सदा अभ्यास करते हैं, उनके संपूर्ण अशुभ कर्म की निर्जरा तथा संवर हो जाता है। पूज्यपाद स्वामी ने समाधितंत्र में कहा भी है-

जो आत्मा तथा देह के भेद विज्ञान से उत्पन्न आह्लाद से युक्त है वह अनेक तप जनित कष्टों को भोगता हुआ भी खेदखिन्न नहीं होता है। यह सब कथन व्यवहारनय से कहा जाता है कि बंधने वाले कर्म की निर्जरा होती है परन्तु परमार्थ से अर्थात् निश्चयनय से नहीं है। ऐसा क्यों है? इसी प्रकार शंका होने पर पुनः आचार्य उत्तर देते हैं कि हे वत्स! सुनो! क्योंकि एक देश से कर्म का विश्लेषण होना अर्थात् निकल जाना निर्जरा कहते हैं। वह निर्जरा कर्म की हो सकती है न कि स्वशुद्ध आत्म-द्रव्य की। क्योंकि संयोगपूर्वक/संबंधपूर्वक ही वियोग संभव है और यह संभव तब होता है जब दो द्रव्य में संयोग होता है। सूक्ष्म दृष्टि से विचार करो कि उस समय जबकि योगी स्वरूप मात्र में अवस्थान कर रहा है उस समय द्रव्यकर्म का आत्मा के साथ संयोगादि कौनसा संबंध हो सकता है अर्थात् किसी भी प्रकार का संबंध नहीं हो सकता है। यदा निश्चय से आत्मा ही ध्यान और ध्येय हो जाता है उस समय प्रत्येक दृष्टि से आत्मा पर द्रव्य से भिन्न होकर केवल स्व-स्वरूप में ही स्थित हो जाता हैं उस समय उसका दूसरे द्रव्य में संबंध ही संभव नहीं है। यह भी संभव नहीं है कि संसारी जीव में ऐसी अवस्था नहीं होती है। अर्थात् संसारी जीव में संयोग (बंध) वियोग (निर्जरा) आदि संभव है परन्तु संसार रूपी समुद्र के तट को प्राप्त करने वाले योगी के मुक्तात्मा के समान पंच ह्रस्व उच्चारण काल (अ, इ, उ, ऋ, लृ) जितना काल तक मुक्तावस्था के समान (निर्बंध/असंयोग) अवस्था रहती है; इसकी अपेक्षा संसारी जीव में भी निर्बंध अवस्था संभव है। शीघ्र ही जिसके समस्त कर्मों का नाश होने वाला है ऐसे (चौदहवें गुणस्थान वाले) जीव में भी उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या के

कारण उस समय तक अर्थात् पाँच ह्रस्व अक्षर बोलने में जितना समय लगता है उतने समय तक कर्म परतंत्रता का व्यवहार होता है। जैसा कि परमागम में कहा है-

जो शील के ईश्वरत्व गुण को प्राप्त किया है, समस्त आस्रवों का निरोध कर लिया है तथा जो कर्मरूपी धूलि से रहित हो गया है, वह अयोग केवली होता है।

समीक्षा-मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः। (8)

मार्ग से च्युत नहीं होने के लिए और कर्मों की निर्जरा करने के लिए जो सहन करने योग्य हो वे परीषह हैं।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को मोक्षमार्ग कहते हैं। यह मोक्षमार्ग संवर एवं निर्जरा सहित है। आस्रव एवं बंध मोक्षमार्ग के विपरीत हैं। मोक्षमार्ग से च्युत होना अर्थात् रत्नत्रय से च्युत होना, कर्मों का आस्रव एवं बंध करना है। परीषह से जीव भयभीत होकर परास्त होकर रत्नत्रय के मार्ग से च्युत हो जाता है। इसलिए यहाँ पर कहा गया है कि, परीषहों को भावपूर्वक, आदरपूर्वक सहन करो जिससे संवर, निर्जरा होगी और मोक्षमार्ग में स्थिरता आएगी। परीषहों कष्टों से कर्मनिर्जरा नहीं होती है परन्तु उसमें जो समता/रत्नत्रय है उससे होती है।

परीषहों को जीतने वाले संत उन परीषहों के द्वारा तिरस्कृत न होते हुए प्रधान संवर का आश्रय लेकर अप्रतिबंध से क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ करने के सामर्थ्य को प्राप्त कर उत्तरोत्तर उत्साह को बढ़ाते हुए सकल कषायों की प्रध्वंस शक्ति वाले होकर ध्यानरूप परशु के द्वारा कर्मों की जड़ को मूल से उखाड़कर जिनके पंखों पर जमी हुई धूल झड़ गई है, उन मुक्त पक्षियों की तरह पंखों को फड़फड़ाकर ऊपर उठ जाते हैं। इसलिए संवर मार्ग और निर्जरा की सिद्धि के लिए परीषह सहन करनी चाहिए। एक कवि ने कहा भी है-

घृष्ठं घृष्ठं पुनरपिपुनः चन्दनं चारू गन्धम्।
छिन्नं-छिन्नं पुनरपिपुनः स्वाद चैव इक्षुदण्डम्।
दग्धं-दग्धं पुनरपिपुनः कंचनं कान्तवर्णम्।
न प्राणान्ते प्रकृतिविकृतिर्जायते चोत्तमानाम्।

चन्दन को जितना घर्षण किया जाता है उतना ही चन्दन अधिक सुगंध प्रदान करता है। गन्ना को जितना पेला जाता है उतना ही स्वादभरित रस प्रदान करता है। सुवर्ण को जितना दग्ध (जलाया) किया जाता है उतना सुवर्णकांत-कमनीय होकर

प्रकाशमान हो जाता है उसी प्रकार साधु-सज्जन धर्मात्मा व्यक्ति जितना ही उपसर्ग, कष्ट, ताड़न, मारन, गाली-गलौचरूपी अग्नि से संतप्त होता है वह उतना ही शुद्ध, निर्मल, पवित्र होकर आध्यात्मिक ज्योति से चमक उठता है। उसका प्राणांत होने पर प्राण से प्रिय, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ धर्म को त्याग नहीं करता है। वह प्रिय धर्मी एवं दृढ़ धर्मी होता है।

क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशसशकनाग्न्यारतिस्त्री चर्यानिषद्याशय्याक्रोशव-धयाचनालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कार पुरस्कार प्रज्ञाज्ञानादर्शनानि। (9)

क्षुधा, तृष्णा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नग्नता, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कार-पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन इन नाम वाले परीषह है।

बाह्य और अभ्यंतर कारणों से जो शारीरिक और मानसिक पीड़ा के कारण भूत क्षुधादि परीषह है, उसे मोक्षमार्ग के पथिक को साम्य भाव से सहन करना चाहिए तथा जीतना चाहिए क्योंकि परीषहों को नहीं जीतने पर और जब सहन नहीं होते हैं तब उससे विविध कर्मबंध हो जाते हैं। परीषह और उपसर्ग भी पूर्वोपार्जित कर्मों से आते है। उस कष्ट को साम्य भाव से सहन करने से पूर्वोपार्जित कर्म की प्रचुर निर्जरा होती है। इसलिए ज्ञानी पूर्वोपार्जित कर्मों की निर्जरा करने के लिए एवं रत्नत्रय से च्युत नहीं होने के लिए कष्टों को साम्य भाव से सहन करते हैं। कहा भी है-

सुखं दुखं वा स्यादिह विहितकर्मोदयवशात्।
कुतः प्रीतिस्तापः कुतः इति विकल्पाद्यदि भवेत्।।
उदासीनस्तस्य प्रगलित पुराणं न हि नवं।
समास्कन्दत्येषु स्फुरति सविदग्धो मणिरिव।। (आ.पृ. 240)

संसार में पूर्वकृत कर्म के उदय से जो भी सुख अथवा दुःख होता है, उससे प्रीति क्यों और खेद भी क्यों, इस प्रकार के विचार से यदि जीव उदासीन होता है, राग और द्वेष से रहित होता है-तो उसका पुराना कर्म तो निजीर्ण होता है और नवीन कर्म निश्चय से बंध को प्राप्त नहीं होता है। ऐसी अवस्थाओं में यह संवर और निर्जरा से सहित जीव अत्यंत निर्मल मणि के समान प्रकाशमान होता है-स्व और पर को प्रकाशित करने वाले केवलज्ञान से सुशोभित होता है।

जो साधक होते हैं उनके जीवन में अनेक विपरीत परिस्थितियाँ भी आती हैं।

साधक इन विपरीत परिस्थितियों से घबराकर पलायनवादी नहीं बनता हैं परन्तु उन परिस्थितियों का सामना करता है। कवि ने कहा है-

जीवन में आये आँधी, आये घोर तूफान।
सुमेरू सा अचल रहे, यही साधु पहचान।।

उत्तर रामचरित में भवभूति ने कहा भी है-

वज्रादपि कठोराणि, मृदुनि कुसुमान्यपि।
लोकोत्तराणि चेतांसि, को वा विज्ञातुमर्हति।।

कर्त्तव्य पालन, कष्ट सहन में वज्र के समान कठोर परन्तु हृदय से कुसुम से भी कोमल ऐसे महान् पुरुष के हृदय को कौन जान सकता है? भर्तृहरि ने कहा भी है- ''विपदि धैर्य'' अर्थात् विपत्ति में धैर्य रखना महान् पुरुष का लक्षण है। विपत्तियों से अनेक शिक्षा मिलती है, धैर्य बढ़ता है, विवेक जाग्रत होता है, सहनशीलता वृद्धिगत होती है।

इसलिए पूज्यपाद स्वामी ने कहा भी है-

अदुःखभावितं ज्ञानं, क्षीयते दुःखसन्निधौ।
तस्माद्यथाबलं दुःखैरात्मानं भावयेन्मुनिः।। (102) (स.त.)

बिना कायक्लेश के भावना किया गया आत्म-स्वरूप का ज्ञान शारीरिक कष्ट आ जाने पर छूट जाता है। इस कारण आत्मध्यानी मुनि यथा-शक्ति परीषह सहन, तथा उपसर्ग सहन आदि शारीरिक कष्टों के साथ आत्म-चिंतन ध्यान करें।

विषयविरतिः संगत्यागः कषायविनिग्रहः।
शमयमदमास्तत्वाभ्यासस्तपराचरणोद्यमः।
नियमितमनोवृत्तिभक्तिर्जिनषु दयालुता।
भवति कृतिनः संसाराब्धस्तटे निकटे सति।। (224) आत्मानुशासन

इन्द्रिय विषयों से विरक्ति, परिग्रह का त्याग, कषायों का दमन, राग-द्वेष की शांति, यम-नियम, इन्द्रिय दमन, सात तत्त्वों का विचार, तपश्चरण में उद्यम, मन की प्रवृत्ति पर नियंत्रण, जिन भगवान् में भक्ति और प्राणियों पर दया भाव ये सब गुण उसी पुण्यात्मा जीव के होते हैं जिसके संसार रूपी समुद्र का किनारा निकट में आ चुका है।

निस्पृह अयाचक रहूँ : दान सेवा की अनुमोदना करूँ

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

ख्याति पूजा लाभ चन्दा चिट्ठा से,
दूर ही रहता हूँ प्रसिद्धि वर्चस्व से।

तथापि जो दान-पूजा-वैयावृत्ति करते,
उनका समर्थन (स्वीकार) करूँ मैं नवकोटि से।। (1)

निस्पृह अयाचक रहूँ अपरिग्रही सदा,
दान सेवा वैयावृत्ति वालों की (करूँ) अनुमोदना।

आहार औषधि ज्ञान उपकरण वसतिका,
दयादत्ति वालों की भी करूँ अनुमोदना।। (2)

पुण्य होता नवकोटि से तथाहि पाप भी,
मन वचन काय कृत कारित अनुमत से भी।

स्वयं भी पुण्य करूँ अनुमोदना करूँ पुण्य की,
स्वयं न पाप करूँ न अनुमोदना पाप की।। (3)

आदिनाथ की जीवनी से मिलती है शिक्षा,
दान व अनुमोदना की महान् शिक्षा।

दानदाता अनुमोदक दशों ही महान्,
भोगभूमि-स्वर्ग से लेकर पाये निर्वाण।। (4)

दान सेवादि हेतु करता हूँ लेखन-प्रवचन,
शोध-बोध-खोज व शिविर-प्रशिक्षण।

प्रशंसा-प्रोत्साहन हेतु भी देता प्रशस्ती-पत्र,
निःस्वार्थ भाव से यह करता हूँ सतत।। (5)

जो न देते दान न करते अनुमोदना,
विरोध निन्दा से बाँधते पाप वे घना।

अंतराय घातीकर्म को बांधते वे पापी,

जन्म-जन्मान्तरे विघ्न-बाधा भोगते वे पापी।। (6)

दान में होता विघ्न न कर पाते हैं दान,
लाभ में होता विघ्न न पाते हैं लाभ।

भोग में होता विघ्न न कर पाते हैं भोग,
उपभोग व शक्ति में पाते विघ्न विभिन्न।। (7)

किसी भी अच्छे काम में न पाते सफलता,
ज्ञान-धन-स्वास्थ्य आदि में मिलती विफलता।

दीन-हीन-दरिद्र रोगी-भिखारी होते,
अकाल मरण आदि दुर्दशाओं को भोगते।। (8)

दान-दानानुमोदना से मिटते वे पाप,
धन्यकुमार आदि चारित्र ग्रंथ प्रसिद्ध।

आधुनिक विज्ञान इसे कर रहा है सिद्ध,
दान-दया-परोपकार से मिले आनंद।। (9)

जीवन में भी अनुभव हो रहे हैं अनेक,
स्व-पर देश-विदेशों के दानी अनेक।

सेवादानी होते जीवन्त धार्मिक लोक,
ज्ञानदान अभी भी करे 'श्रमण कनक'।। (10)

(इस संबंधी विशेष परिज्ञान हेतु कविकृत ''सेवादानी होते हैं जीवन्त धार्मिक'' आदि कृतियों का अध्ययन करें।)

सीपुर, दिनांक 23.12.2016, रात्रि 9.02 व 10.00

संदर्भ-

अन्तराय कर्म का आस्रव

विघ्नकरणमन्तरायस्य। (27)

The inflow of obstructive अन्तराय Karma is caused by disturbing others in दान Charity लाभ gain, भोग enjoyment of consumable things; and वीर्य making use of their powers.

दानादिक में विघ्न डालना अन्तराय कर्म का आस्रव है।

दानादि का विघात करना विघ्न कहलाता है। दानादि अर्थात् दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य। किसी के दान लाभादि में विघ्न उपस्थित करना विघ्न कहलाता है। ज्ञान का प्रतिच्छेद सत्कारोपघात (किसी के सत्कार में विघ्न डालना) दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, स्नान, अनुलेपन, गन्ध, माल्य, आच्छादन, विभूषण, शयन, आसन, भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य और परिभोग आदि में विघ्न करना, किसी के विभव, समृद्धि में विस्मय करना, द्रव्य का त्याग नहीं करना, द्रव्य के उपयोग के समर्थन में प्रमाद करना, देवता के लिए निवेदित किये गये या अनिवेदित किये गये द्रव्य का ग्रहण करना, देवता का अवर्णवाद करना, निर्दोष उपकरणों का त्याग, दूसरों की शक्ति का अपहरण, धर्म का व्यवच्छेद करना, कुशल चारित्र वाले तपस्वी, गुरु तथा चैत्य की पूजा में व्याघात करना, दीक्षित, कृपण, दीन, अनाथ आदि को दिये जाने वाले वस्त्र, पात्र, आश्रय, आदि में विघ्न करना, परनिरोध, बन्धन, गुह्य अंगच्छेदन, कान, नाक, ओंठ आदि का काट देना, प्राणिवध आदि अन्तराय कर्म के आस्रव के कारण हैं।

तपस्विगुरुचैत्यानां पूजालोपप्रवर्तनम्।
अनाथदीनकृपणभिक्षादिप्रतिषेधनम्।। (55)
वधबन्धनिरोधैश्च नासिकाच्छेदकर्तनम्।
प्रमादाद्देवतादत्तनैवेद्यग्रहणं तथा।। (56)
निरवद्योपकरणपरित्यागो वधोऽङ्गिनाम्।
दानभोगोपभोगादिप्रत्यूहकरणं तथा।। (57)
ज्ञानस्य प्रतिषेधश्च धर्मविघ्नकृतिस्तथा।
इत्येवमन्तरायस्य भवन्त्यास्रवहेतवः।। (58) (तत्त्वार्थसार पृ.123)

तपस्वी, गुरु और प्रतिमाओं की पूजा न करने की प्रवृत्ति चलाना, अनाथ, दीन तथा कृपण मनुष्यों को भिक्षा आदि देने का निषेध करना, वध-बन्धन तथा अन्य प्रकार की रुकावटों के साथ पशुओं की नासिका आदि का छेद करना, देवताओं को चढ़ाये हुए नैवेद्य का प्रमाद से ग्रहण करना, निर्दोष उपकरणों का परित्याग करना (जिन पीछी या कमण्डल आदि उपकरणों में कोई खराबी नहीं आई है उन्हें छोड़कर नये ग्रहण करना), जीवों का घात करना, दान-भोग-उपभोग आदि में विघ्न करना, ज्ञान का प्रतिषेध करना-स्वाध्याय या पठन-पाठन का निषेध करना तथा धर्मकार्यों में

विघ्न करना ये सब अन्तराय-कर्म के आस्रव के हेतु हैं।

अन्तराय कर्म के भेद

दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम्। (13)

(1) दानान्तराय-दानादि परिणाम के व्याघात का कारण होने से दानान्तराय आदि व्यपदेश होते हैं। जिसके उदय से देने की इच्छा होने पर भी दे नहीं सकता, दानान्तराय है।

(2) लाभान्तराय-लाभ की इच्छा होने पर भी लाभ नहीं हो पाता है, वह लाभान्तराय है।

(3) भोगान्तराय-जिसके उदय से भोगने की इच्छा होने पर भी भोग नहीं कर सकता वह भोगान्तराय कर्म है।

(4) उपभोगान्तराय-उपभोग की इच्छा होने पर भी जिसके उदय से वस्तु का उपभोग कर नहीं सकता, वह उपभोगान्तराय है।

(5) वीर्यांतराय-कार्य करने का उत्साह होते हुए भी जिसके उदय से निरुत्साहित हो जाता है, वह वीर्यांतराय कर्म है।

ये दानान्तराय आदि पाँच अन्तराय कर्म के भेद हैं।

प्रश्न-भोग और उपभोग दोनों ही सुखानुभव में निमित्त है अतः इन दोनों में अविशेषता होने से अभेदत्व (भेद नहीं) है?

उत्तर-यद्यपि भोग और उपभोग दोनों सुखानुभव में निमित्त हैं तथापि एक बार भोगने में आने वाली गंध, माला, स्नान, अन्न-पानादि वस्तुओं में भोग व्यपदेश (संज्ञा) होता है (भोग है, ऐसा व्यवहार होता है) और शय्या, आसन, स्त्री, हाथी, घोड़ा, रथ आदि बार-बार भोगने में आने वाली वस्तुओं में उपभोग-व्यपदेश होता है। इस प्रकार आदि कर्मों की उत्तर प्रकृतियों की संख्या कही है। फलविशेष की अपेक्षा ज्ञानावरण और नामकर्म की उत्तर प्रकृतियाँ असंख्यात भी होती हैं।

स्थितिबंध का वर्णन

आदितस्तिसृणामन्तरायस्यचत्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः परास्थितिः। (14)

आदि की तीन प्रकृतियाँ अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और वेदनीय तथा अन्तराय इन चार की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटि-कोटि सागरोपम है। यह उत्कृष्ट स्थिति

संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक के हैं। अन्य एकेन्द्रिय आदि के ज्ञानावरण आदि का उत्कृष्ट स्थितिबंध आगम से जानना चाहिये। जैसे-एकेन्द्रिय पर्याप्त के ज्ञानावरण आदि का उत्कृष्ट स्थितिबंध 3/7 सागर (एक सागर के सात भागों में से तीन भाग) प्रमाण हैं। द्वीन्द्रिय पर्याप्तक जीव के उत्कृष्ट स्थिति पच्चीस सागर के सात भागों में से तीन भाग प्रमाण हैं। तीन इन्द्रिय पर्याप्तक के पचास सागर के सात भागों में से तीन भाग प्रमाण हैं। चतुरिन्द्रिय पर्याप्त के सौ सागर के सात भागों में से तीन भाग प्रमाण हैं। असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक के एक हजार सागर के सात भागों में से तीन भाग प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक के अन्तः कोटाकोटि सागर उत्कृष्ट स्थिति एकेन्द्रिय अपर्याप्त के पल्योपम के असंख्यात भाग कम स्वपर्याप्तक की उत्कृष्ट स्थिति प्रमाण हैं। इसी प्रकार दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक की उत्कृष्ट स्थिति का प्रमाण अपनी-अपनी पर्याप्तक की उत्कृष्ट स्थिति में से पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग कम हैं।

''दीन अनाथ होने का कर्म''

सेवन्ते प्रत्यहं येऽत्र भोगानन्यायकर्मभिः।
यान्ति जातु न संतोष बहुभिर्भोग सेवनैः।। (149)
पात्रदान जिनार्चां न नैव स्वप्नेऽपि कुर्वते।
तेऽघपाकेन जायन्ते दीना भोगादि वर्जिताः।। (150)

(वीर वर्धमान चरिते सप्तदशोऽधिकार)

जो पुरुष इस लोक में प्रतिदिन अन्याय और अत्याचार-परिपूर्ण कार्यों के द्वारा भोगों को भोगते हैं, बहुत भोगों के सेवन से भी कभी संतोष को प्राप्त नहीं होते हैं और पात्रदान, जिनपूजा आदि को स्वप्न में भी नहीं करते हैं, वे उस पाप के परिपाक द्वारा भोगों से रहित दीन अनाथ उत्पन्न होते हैं।

समर्था अपि ये पात्रदानं श्री जिनपूजनम्।
धर्मकार्य च जैनानामुपकारं न कुर्वते।। (153)
वाञ्छन्ति सकला लक्ष्मीर्लोभाद्धर्मव्रतातिगाः।
तेऽघपाकेन दुःखढ्या निर्धनाः स्युर्भवे भवे।। (154)

जो पुरुष समर्थ होकर के भी पात्रदान, श्री जिनपूजन, धर्म कार्य और जैनों का

उपकार नहीं करते हैं, धर्म और व्रत से दूर रहते हैं और लोभ से संसार की संपदाओं की वांछा करते हैं, वे जीव पाप के परिपाक से भव-भव में निर्धन और दुःख भोगने वाले होते हैं।

''विपत्तिग्रस्त होने का कर्म''

ये पुरा मनुजा नित्यमुत्कोचनपरायणाः।
भीषयन्ति परान् नित्यं विकुर्वन्ति तथैव च।।
ऋणवृद्धिकाराश्चैव दरिद्रभ्यो यथेष्टतः।
येश्चभिः क्रीडमानाश्च त्रासयन्ति वने मृगान्।।
प्राणिहिंसा तथा देवि कुर्वन्ति च यतस्ततः।
येषां गृहेषु वैश्वानः त्रासयन्ति वृथा नरान्।।
एवयुक्तं समाचाराः कालधर्मगताः पुनः।
पीड़िता यमदण्डेन निरयस्थाश्चिरं प्रिये।।
कथंचित् प्राप्य मानुष्यं तत्र ते दुःख संयुताः।
कुदेशे दुःखभूयिष्ठे व्याघातशतसंकुले।।
जायन्ते तत्र शोचन्तः सोद्वेगाश्च यतस्ततः। (महाभारत)

श्री महावीर ने कहा-देवि! जो मनुष्य पहले प्रतिदिन घूस लेते हैं। दूसरों को डराते हैं और उनके मन में विकार उत्पन्न कर देते हैं, अपनी इच्छानुसार दरिद्रों का ऋण बढ़ाते हैं, जो कुत्तों से खेलते और मृगों को त्रास पहुँचाते हैं। जहाँ-तहाँ प्राणियों की हिंसा करते हैं। जिनके घरों में पले हुए कुत्ते व्यर्थ ही लोगों को डराते हैं, चिरकाल तक नरक में पड़े रहते हैं, फिर किसी प्रकार मनुष्य का जन्म पाकर अधिक दुःख से भरे हुए सैकड़ों बाधाओं से व्याप्त कुत्सित रहते हैं।

''दास होने का कर्म''

मिथ्यादृशां कुदेवानां कुत्सितानां कुलिङ्गिनाम्।
सेवां भक्तिं च कुर्वन्ति ये धर्माय वृषोपमाः।। (168)
न च श्री जिननाथानां धर्मिणां न सुयोगिनाम्।
परकिङ्करता पापात्ते लभन्ते पदे-पदे।। (169) (श्री.वर्ध. चरित 17 अधिकार)

जो पुरुष मिथ्यादृष्टि कुदेवों की और खोटे आचरण करने वाले कुलिंगियों की

धर्म-प्राप्ति के लिए सेवा और भक्ति करते हैं और श्री जिननाथों की, धर्मात्मा सुयोगियों की सेवा भक्ति नहीं करते हैं, वे अपने इस उपार्जित पाप से बैलों के समान पद-पद पर, पर-बंधन में बद्ध होकर दासपने को पाते हैं।

दातृत्व गुण प्राप्त होने का कर्म

पात्रेभ्यो येऽनिशं दानं धनं भक्त्या च सिद्धये।
चैत्य चैत्यालयादीनां ददते धर्मकाङ्क्षिणः।। (160)
तेषां सर्वत्र जायेत दातृत्व गुण उत्तमः।
पूर्व संस्कार योगेन श्रेयसेऽत्र परत्र च।। (161)

जो धर्म के अभिलाषी जन पात्रों के लिए सदा दान देते है, जिन प्रतिमा और जिनालय आदि के निर्माण के लिए भक्ति के साथ धन देते हैं, उनके पूर्व संस्कार के योग से सर्वत्र उत्तम दातृत्व गुण प्राप्त होता है, जो उनके इस लोक और परलोक में कल्याण के लिए कारण होता है।

सौभाग्यशाली होने का कर्म

ये कुर्वन्ति परां भक्ति जिनेन्द्रागमयोदिनाम्।
आचरन्ति तपोधर्मं व्रतानि नियमादिकान्।। (125)
हत्वा च दुर्ममत्वादीन् जयन्तीन्द्रिय तस्करान्।
स्युस्ते नेत्रप्रिया लोके सुभगाः सुभगोदयात्।। (126)

जो पुरुष जिनदेव, जिनागम और योगियों की परम भक्ति करते हैं, तप, धर्म, व्रत और नियम आदि को धारण करते हैं। खोटे ममत्व आदि का घात कर इन्द्रिय रूप चोरों को जीतते हैं, ये पुरुष सुभग कर्म के उदय से लोक में सौभाग्यशाली और नेत्रप्रीत होते हैं।

सर्व संपदाओं के स्वामी होने का कर्म

त्रिजगत्स्वामिनश्चार्हद् गणेन्द्रागम योगिनः।
रत्नत्रयं तपोधर्म माराधयन्ति येऽनिशम्।। (170)
त्रिशुद्ध्या नुति पूजाद्यैस्त्यक्त्वा सर्वान्मतान्तरान्।
उत्पद्यन्तेऽत्र पुण्यात्ते स्वामिनो विश्व सम्पदाम्।। (171)

जो लोग तीन जगत् के स्वामी अर्हंतों की, गणधरों की, जिनागम की, योगीजनों की, रत्नत्रय धर्म की और तप की निरंतर मन-वचन-काय की शुद्धिपूर्वक और सर्व मतान्तरों को छोड़कर आराधना करते हैं, वे इस लोक में उस पुण्य से सर्व संपदाओं के स्वामी होते हैं।

भोग-संपदाओं को प्राप्त होने का कर्म

ददते येऽन्वहं दानं सत्पात्रेभ्योऽति भक्तितः।
अर्चयन्ति जितेन्द्राङ्घ्री गुरु पादाम्बुजौ शुभौ।। (147)
विद्यमानान् बहून् भोगांस्त्यजन्ति धर्म सिद्धये।
ते लभन्तेऽत्र धर्मेण महतीर्भोग संपदः।। (148)

जो पुरुष सत्पात्रों के लिए अति भक्ति से प्रतिदिन दान देते हैं, जिनेन्द्र देव के और गुरुजनों के शुभाचरण-कमलों को पूजते हैं और धर्म की सिद्धि के लिए विद्यमान बहुत से भोगों को छोड़ते हैं, वे मनुष्य इस लोक में धर्म के द्वारा महाभोग संपदाओं को पाते हैं।

ये तन्वन्ति सदा धर्मं पूजनं च जिनेशिनाम्।
वितरन्ति सुपात्रेभ्यो दानं भक्तिभराङ्किताः।। (151)
तपोव्रतयमादींश्चाचरन्ति लोभदूरगाः।
तान् प्रति स्वयमायान्ति जगत्साराः श्रियः शुभात्।। (152)

जो सदा धर्म का विस्तार करते हैं, जिनेशों का पूजन करते हैं, भक्ति भाव से युक्त होकर सुपात्रों को दान देते हैं, तप, व्रत, संयमादि का आचरण करते हैं और लोभ से दूर रहते हैं, उनके पास पुण्य कर्म के उदय से जगत् में सारभूत लक्ष्मी स्वयं जाती है।

इष्ट संयोग प्राप्त होने का कर्म

दूषयन्ति न जीवान् ये वियोग ताडनादिभिः।
पोषयन्ति सदा जैनांस्तदीहित सुसंपदा।। (157)
सेवन्ते यत्नतो धर्मं व्रतदानार्चनादिभिः।
स्पृहयन्ति च शर्मस्त्रीतुग्धनादीन् शिवं विना।। (158)
संपद्यन्तेऽत्र तेषां च पुण्य भाजां सुपुण्यतः।

संयोगाश्च मनोऽभीष्ट पुत्रस्त्री धन कोटिभिः।। (159)

जो पुरुष वियोग, ताड़न आदि से दूसरे जीवों को दुःख नहीं पहुँचाते हैं, सदा जैनों का उनकी अभीष्ट संपदा से अर्थात् मनोवांछित वस्तु देकर पोषण करते हैं, यत्नपूर्वक व्रत, दान, पूजनादि के द्वारा धर्म का सेवन करते हैं, मोक्ष के बिना सांसारिक सुख-स्त्री, पुत्र और धनादिक की इच्छा नहीं करते हैं, उन पुण्यशाली लोगों को सुपुण्य के निमित्त से मनोभीष्ट पुत्र, स्त्री और कोटि-कोटि धन के साथ इस लोक में संयोग प्राप्त होते है।

सुसंग एवं कुसंग प्राप्त होने का कर्म

गुणाब्धीनां गुरुणां च ज्ञानिनां जिनयोगिनाम्।
सद्दृष्टीनां सदा सङ्गं कुर्वते तद्गुणाय ये।। (188)
तेषां संपद्यते साधर्मं गुर्वादिगुणिभिश्च तैः।
भवेत्सर्वमहान् सङ्गः स्वर्ग मुक्ति गुणादिदः।। (189)

जो मनुष्य गुणों के सागर ऐसे जिन योगियों की, ज्ञानी गुरुओं की और सम्यग्दृष्टि पुरुषों के, उनके गुण पाने के लिए सदा संगति करते हैं उन्हें गुणी गुरु अनादि सुजनों के साथ स्वर्ग-मुक्ति का दाता महान् संगम प्राप्त होता है।

संसर्ग मुत्तमानां ये त्यक्त्वा कुर्वन्ति चान्वहम्।
गुण ध्वंसकरं सङ्गं मिथ्यादृशां शठात्मनाम्।। (190)
तेऽधोगामिन एवाहो इहामुत्रासुनाशिनम्।
सङ्ग तद्गति हेतुं तैलभन्ते दुर्जनैः सह।। (191)

जो लोग उत्तम जनों का संगम छोड़कर अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों का गुण-नाशक संगठन नित्य करते हैं, वे अधोगामी जीव इस लोक और परलोक में प्राण नाशक और दुर्गति का कारणभूत कुसंग-दुर्जनों का साथ सदा पाते हैं।

अशुभाशय होने का कर्म

पर स्त्री हरणादौ ये कौटिल्यं कुटिलाशयाः।
चिन्तयन्त्यन्वहं चित्ते ह्युच्चाटनं च धर्मिणाम्।। (141)
तुष्यन्ति मनसा दृष्ट्वा दुराचाराणि दुर्धियाम्।
पापार्जनाय जायन्ते तेऽशुभेनाशुभाशयाः।। (142)

जो कुटिल अभिप्राय वाले मनुष्य पर स्त्री हरण आदि कुटिल प्रवृत्ति करते हैं, धर्मात्माजनों के उच्चाटन का चित्त में सदा विचार करते रहते हैं और दुर्बुद्धियों के दुराचारों को देखकर मन में संतुष्ट होते हैं, वे अशुभ कर्म के उदय से पापोपार्जन के लिए अशुभ अभिप्राय वाले उत्पन्न होते हैं।

निन्दनीय होने का कर्म

निन्दां कुर्वन्ति ये दुष्टा जिनेशां च गणेशिनाम्।
सिद्धान्तस्य च निर्ग्रन्थ श्रावकादिषु धर्मिणाम्।। (182)
प्रशंसा पापिनां मिथ्यादेवश्रुत तपस्विनाम्।
तेऽयशः कर्मणा दोषाढ्या निन्द्याः स्युर्जगत्त्रये।। (183)

जो दुष्ट पुरुष जिन राजाओं की, गणधरों की, जिन सिद्धांत की, निर्ग्रन्थ साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकादि धार्मिक जनों की निन्दा करते हैं तथा पापी मिथ्या देव-शास्त्र-गुरुओं की प्रशंसा करते हैं वे अयशः कीर्ति कर्म के उदय से तीनों लोकों में निन्दनीय और दुःखों से संयुक्त होते हैं।

शुभाशय होने का कारण

वैराग्य भव भोगाङ्गे जिनेन्द्र गुरु सद्गुणान्।
धर्म धर्माय तत्त्वादीन् चिन्तयन्ति सदा हृदि।। (139)
त्यक्त्वा ये चार्जवादीन्न कौटिल्यं दधते क्वचित्।
शुभाशया भवेयुस्ते शुभाच्छुभविधायिनः।। (140)

जिनके हृदय में संसार, भोग और शरीर से वैराग्य है, जिनेन्द्र देव और सद्गुरु के गुणों का, धर्म का और तत्त्वादि का धर्म-प्राप्ति के लिए सदा चिन्तवन करते हैं, जो आर्जव आदि सद्गुणों को छोड़कर क्वचित्-कदाचित् भी कुटिलता नहीं करते हैं। वे शुभ आशय वाले पुरुष पुण्य कर्म के उदय से शुभ कार्यों के करने वाले होते हैं।

धर्मात्मा होने का कर्म

ये कुर्वन्ति सदा धर्म तपोव्रत क्षमादिभिः।
सत्पात्रदान पूजाद्यैदृक् चिद्वृतैदृगन्विताः।। (143)
ते नाकादौ सुखं भुङ्क्त्वा पुनरुच्चैः पदाप्तये।

धर्म कर्मकरा धर्मादुत्पाद्यन्तेऽत्र धर्मिणः।। (144)

जो पुरुष तप, व्रत, क्षमादि के द्वारा, सत्पात्रदान-पूजादि के द्वारा दर्शन, ज्ञान और चारित्र के द्वारा सदा धर्म को करते हैं, सम्यग्दर्शन से युक्त हैं, वे स्वर्गादि में सुख भोगकर पुनः उच्च पदों की प्राप्ति के लिए धर्मकार्य करते हैं, वे जीव इस लोक में धर्म के प्रभाव से धर्मात्मा होकर उत्पन्न होते हैं।

मेरा लक्ष्य/(उद्देश्य) : स्वात्मोपलब्धि रूप मोक्षसुख

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे....., सायोनारा.....)

कनक/(आत्मन्) तू लक्ष्यनिष्ठ बनऽऽऽ
तेरा लक्ष्य है मोक्ष पानाऽऽऽ स्वात्म-उपलब्धिमय जोऽऽऽ...(ध्रुव)...

द्रव्य-भाव-नोकर्म क्षय है मोक्षऽऽऽ स्व-आत्मोपलब्धि रूप मोक्षऽऽऽ
जन्म-जरा-मरण क्षय है मोक्षऽऽऽ शुद्ध-बुद्ध-आनंद स्वरूपऽऽऽ
स्व-शुद्ध आत्म-लीनऽऽऽ कनक...(1)...

मोक्ष हेतु त्यागो राग-द्वेष-मोहऽऽऽ काम क्रोध ईर्ष्या व तृष्णाऽऽऽ
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि त्यागोऽऽऽ अहंकार-ममकार को सर्वदाऽऽऽ
संकल्प-विकल्प-संक्लेश सर्वथाऽऽऽ कनक...(2)...

ध्यान-अध्ययन व तप-त्याग करोऽऽऽ समता-शांति-शुचिता वरोऽऽऽ
निस्पृह-निराडम्बर-निर्द्वंद्व बनोऽऽऽ आत्मविशुद्धि से आत्म-उन्नति करोऽऽऽ
आत्मानुशासी-वीतरागी बनोऽऽऽ कनक...(3)...

अनंत सुख पाना ही तेरा लक्ष्यऽऽऽ सांसारिक सत्ता-संपत्ति परेऽऽऽ
आत्म वैभव-प्रभुत्व तेरा लक्ष्यऽऽऽ सांसारिक वैभव-प्रभुत्व परेऽऽऽ
सांसारिक सत्तादि क्षय है मोक्ष/(लक्ष्य)ऽऽऽ कनक...(4)...

लौकिक शिक्षा-कृषि-व्यापार आदिऽऽऽ विवाह-भोगोपभोग-राजनीतिऽऽऽ
वर्चस्व-प्रसिद्धि ख्याति पूजा लाभऽऽऽ प्राप्त करना न यथार्थ लक्ष्यऽऽऽ
अनंत सुख पाना यथार्थ लक्ष्यऽऽऽ कनक...(5)...

आहार-भय-मैथुन-परिग्रह हेतुऽऽऽ करते जो भाव/(लक्ष्य) व व्यवहारऽऽऽ

वे सभी संज्ञा लेश्या कषाय युक्तऽऽऽ राग-द्वेष-मोह-कामादि संयुक्तऽऽऽ
मोक्ष लक्ष्य से ये सभी विपरीतऽऽऽ कनक...(6)...

लक्ष्य प्राप्ति हेतु करो आत्मविश्वासऽऽऽ सम्यग्ज्ञान युक्त सम्यक्चारित्रऽऽऽ
उदार पावन भावना सहितऽऽऽ सतत करो लक्ष्यानुसार पुरुषार्थऽऽऽ
'कनक' स्व-लक्ष्य प्राप्त करेऽऽऽ/(शुद्ध-बुद्ध-आनंदमय (तव) लक्ष्यऽऽऽ) कनक...(7)...

लक्ष्य निर्धारण से स्पष्टता आतीऽऽऽ उत्साह प्रेरणा का होता सञ्चारऽऽऽ
संशय द्वंद्व अस्थिरता नशतेऽऽऽ लक्ष्य प्राप्ति हेतु (होते) भाव-व्यवहारऽऽऽ
लक्ष्यनिष्ठ में (होती) शक्ति अपारऽऽऽ कनक...(8)...

सीपुर, दिनांक 24.12.2016, प्रातः 7.55

संदर्भ-

अपने सच्चे लक्ष्य तय करें

विलियम मोल्टन मार्सडेन-एहसास करे कि आप वास्तव में क्या चाहते हैं। इससे आप तितलियों का पीछा करने से बचेंगे और सोना खोदने में जुट जायेंगे।

लक्ष्य निर्धारण हो या सफलता, मेरा प्रिय शब्द है ''स्पष्टता।'' आप कौन हैं, आपकी इच्छाएँ क्या हैं और आप जिंदगी में क्या हासिल करना चाहते हैं, उसके बारे में आपकी स्पष्टता के स्तर और उनके साकार होने के बीच सीधा संबंध होता है।

सफल स्त्री-पुरुष अपने और अपनी वास्तविक इच्छाओं के बारे में पूरी स्पष्टता हासिल कर लेते हैं, कुछ उसी तरह जिस तरह इमारत बनाने से पहले आर्किटेक्ट उसका विस्तृत ब्लूप्रिंट तैयार करता है। अधिकांश लोग बिना सोचे-समझे बस जिंदगी में दौड़ना शुरू कर देते हैं, कुछ उसी तरह जिस तरह कोई कुत्ता पास से गुजरने वाली कार के पीछे दौड़ने लगता है। फिर ये लोग हैरान होते हैं कि वे कभी कोई चीज पकड़ क्यों नहीं पाते या कोई सार्थक चीज कायम क्यों नहीं रख पाते।

हेनरी डेविड थोरो ने एक बार लिखा था, ''क्या आपने हवा में महल बना लिया है? अच्छी बात है। उसे वहीं होना चाहिए। अब मेहनत करके उसके नीचे नींव भी बना दें।''

इस अध्याय में आप अपने सपनों और जीवन मूल्यों को स्पष्ट लक्ष्यों तथा उद्देश्यों में ढालेंगे, ताकि आप हर दिन उन पर काम कर सकें।

व्यक्तिगत लक्ष्य बनायें-मैं पहले भी जिक्र कर चुका हूँ कि बाधाओं को पार करने और महान् लक्ष्यों को हासिल करने के लिए प्रबल, ज्वलंत इच्छा अनिवार्य है और प्रबल इच्छा तभी जाग सकती है, जब आपके लक्ष्य पूर्णतः व्यक्तिगत हो। व्यक्तिगत लक्ष्य इंसान अपनी इच्छा से खुद चुनता है। लक्ष्य इस आधार पर नहीं चुने जाने चाहिए कि कोई दूसरा आपसे वे काम करवाना चाहता है या आप किसी दूसरे को खुश करने के लिए किसी चीज को हासिल करना चाहते हैं। लक्ष्य निर्धारण की प्रक्रिया को असरदार बनाने के लिए आपको इस बारे में घोर स्वार्थी बन जाना चाहिए। आपको उसे ही चुनना चाहिए, जिसे आप सचमुच चाहते हो।

इसका यह मतलब नहीं है कि आप घर पर या ऑफिस में दूसरे लोगों के लिए काम नहीं कर सकते। इसका मतलब तो सिर्फ यह है कि जिंदगी के लक्ष्य तय करते वक्त आप खुद से शुरुआत करते हैं और आगे की तरफ काम करते हैं।

बड़ा सवाल-लक्ष्य निर्धारण में एक बहुत अहम सवाल यह है-**मैं जिंदगी में सचमुच क्या करना चाहता हूँ?** अगर आप जिंदगी में सिर्फ एक चीज कर सके, बन सके या पा सके, तो वह क्या होगी? याद रखे, आप किसी ऐसे टारगेट पर निशाना नहीं लगा सकते, जिसे आप देख ही न सकते हो। आगे आने वाले महीनों और बरसों में इस सवाल पर बार-बार लौटना होगा।

सच्चे लक्ष्य तय करते वक्त आप अपने सपनों, जीवन मूल्यों और आदर्शों से शुरुआत करते हैं। शुरू में ये वास्तविकता से परे या फंतासी जैसे लगेंगे। बहरहाल, अब आपका काम उन्हें मूर्त बनाना है-कागज पर सपनों के घर की रूपरेखा बनाने की तरह।

(ब्रायन ट्रेसी)

वैश्विक धर्म व शांति के उपाय

मानवों के सुखी होने के सूत्र (विश्व शांति के उपाय)

(4 कषाय-7 व्यसन-5 पापों का 9 कोटि से त्याग)

(पुलिस-सेना-न्यायालय आदि अभाव की मेरी भावी कल्पना)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : झिलमिल सितारों का....., तुम दिल की.....)

तब ये मानव सुखी बनेंगे...क्रोध मान माया लोभ छोड़ेंगे...

फैशन-व्यसन-आडम्बर छोड़ेंगे...हिंसा झूठ चोरी कुशील संग्रह छोड़ेंगे...(ध्रुव)...

इससे (मानव) अनेक अनर्थ से बचेंगे...आक्रमण युद्ध हत्या न करेंगे...
अन्याय-अत्याचार-भ्रष्टाचार न करेंगे...चोरी-मिलावट-ठगी न करेंगे...

मिथ्या कथन-मिथ्याचार न करेंगे...आतंकवाद-बलात्कार न करेंगे...
परनिन्दा अपमान गाली न देंगे...हित-मित-प्रिय-सत्य बोलेंगे...(1)...

झगड़ा-कलह-वाद-विवाद न करेंगे...वर्चस्व-प्रसिद्धि का त्याग करेंगे...
नशीली वस्तुओं का सेवन छोड़ेंगे...दबाव-प्रलोभन-भेदभाव न होंगे...

धन-जन-साधन व समय बचेंगे...पुलिस-सेना-न्यायालय न होंगे...
अस्त्र-शस्त्र व सैनिक न होंगे...सुरक्षा हेतु ताम-झाम न होंगे...(2)...

तन-मन-अक्ष अस्वस्थ्य कम होंगे...औषधि डॉक्टर आदि कम ही होंगे...
प्रकृति शोषण भी कम ही होगा...विभिन्न प्रदूषण भी कम ही होंगे...

कितने सरल-प्रभावकारी ये सूत्र...बिना धन खर्च के उत्तम सूत्र...
किन्तु उन्नत प्राणी ये मानव गण...करते क्रूर पशु से भी अयोग्य काम...(3)...

पशु से भी अधिक नीच वे मानव...जो उक्त दोषों से होते आबद्ध...
भले वे होते हो आधुनिक शिक्षित...किसी भी जाति-धर्म-राष्ट्र-संबद्ध...

सुखी होने के उक्त सूत्र से शून्य...अन्य सभी उपाय शून्य के सम...
चैतन्य बिना यथा शरीर शव...उक्त सूत्र बिन सर्व उपाय व्यर्थ...(4)...

उक्त सूत्र सर्वज्ञ देव द्वारा प्रणीत...उक्त सूत्र युक्त अन्य उपाय निमित्त...
वैज्ञानिक भी मान रहे उक्त सूत्र...'कनक' माने उक्त सूत्र सर्व उत्तम...(5)...

सीपुर, दिनांक 24.12.2016, रात्रि 9.06

ग्रीनपीस की स्टडी

वायु प्रदूषण से भारत में चीन से ज्यादा मौतें

पिछले एक साल में देश में वायु प्रदूषण से होने वाली मौतें तेजी से बढ़ी हैं। ग्रीन पीस के अध्ययन में यह सामने आया है कि भारत में वायु प्रदूषण से होने वाली मौतें चीन में भी ज्यादा हैं।

वायु प्रदूषण से मौतें-भारत-वर्ष 2000 में 2502, 2005 में 2634, 2010 में 2865 एवं 2015 में 3283 इसी प्रकार चीन में वर्ष 2000 में 3010, 2005 में 3321, 2010 में 3100 तथा 2015 में 3233 लोगों की मृत्यु हुई।

दुनिया के 10 सबसे ज्यादा प्रदूषित शहरों में 4 भारत के-ईरान के जाबोल 217, भारत का ग्वालियर 276, इलाहाबाद 170, पटना 149, रायपुर 144 तथा दिल्ली 122 के पी.एम. 2.5 स्तर तक प्रदूषित है। सऊदी अरब के रियाद में 156, अल-जुबेल 152, कैमरून के बामेदा 132, चीन का जिंगतई 128, बाउडिंग 126 पी.एम. 2.5 स्तर तक प्रदूषित शहर है।

हर वर्ष 70 लाख मौतें और रु. 15257 अरब का नुकसान

सर्दी के मौसम में नई दिल्ली पर अक्सर कोहरे की गहरी चादर छाई रहती है। शहर की सड़कों पर चलने वाली 90 लाख से अधिक कारों और धुआँ उगलती फैक्ट्रियों के कारण धुंध पीले से गहरे रंग में बदलती रहती है। 2015 के एक अध्ययन में बताया गया, प्रदूषित हवा हर वर्ष 30000 से अधिक असामयिक मौतों के लिए जिम्मेदार है। वायु प्रदूषण के मामले में दिल्ली अकेला शहर नहीं है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिसर्च में पाया गया है, विश्व की 90% आबादी उन क्षेत्रों में रहती है जहाँ वायु प्रदूषण स्वास्थ्य के लिए नुकसानदेह है। नई दिल्ली, बीजिंग के अलावा न्यूयॉर्क, लंदन भी वायु प्रदूषण से प्रभावित शहरों की सूची में हैं। अधिकतर यूरोपीय शहरों में पर्यावरण सुरक्षा के कड़े कानून लागू हैं लेकिन हाल के वर्षों में वे भी धुंध से प्रभावित रहे हैं। पुरानी रिसर्च बताती है, प्रदूषित हवा से फेफड़े और दिल की बीमारियाँ होती हैं। लेकिन, वैज्ञानिकों ने प्रदूषण के निम्नतम स्तर से भी शरीर को होने वाले नुकसान का पता लगाया है। जहरीली हवा के सूक्ष्म कण दिमाग को हानि पहुँचाते हैं और गर्भ में भ्रूण को नष्ट कर सकते हैं। दुनिया भर में 70 लाख व्यक्ति वायु प्रदूषण के कारण समय पूर्व मरते हैं। वायु प्रदूषण ने अर्थव्यवस्था पर भी चोट की है। विश्व बैंक का अनुमान है, जहरीली हवा से जुड़ी मौतों की कीमत हर वर्ष 15257 अरब रुपये है।

भीड़ भरे ट्रैफिक से मनोभ्रम का खतरा!

भीड़-भाड़ और ट्रैफिक वाले इलाकों में रहने वालों को सावधान होने की

जरूरत है। नये शोध में खुलासा हुआ है कि इससे मनोभ्रम की बीमारी का खतरा है। ज्यादा ट्रैफिक वाली सड़कों के 50 मीटर दायरे में रहने वालों को यह खतरा अधिक होता है। मनोभ्रम में दिमाग की कोशिकाएँ घट जाती हैं और इंसान की सोच, याददाश्त, व्यवहार व रास्ते पहचानने की क्षमता भी प्रभावित होती है। इससे रोजमर्रा के काम कर पाना भी मुश्किल हो जाता है। इस बीमारी का कोई ईलाज नहीं है। डब्ल्यूएचओ के अनुसार अभी इस बीमारी से ग्रसित 4.75 करोड़ लोग हैं।

संदर्भ-

धर्माचरण की प्रेरणा

पापद् दुःख धर्मात्सुखमिति सर्वजन सुप्रसिद्धमिदम्।
तस्माद्विहाय पापं चरतु सुखार्थी सदा धर्मम्।। (8) आत्मा.

अर्थ-''पाप से दुःख होता है और धर्म से सुख होता है'' यह कथन समस्त लोक में प्रसिद्ध है। सभी ऐसा मानते हैं और कहते हैं। इसलिए जिसे सुख चाहिए है उसे पाप को छोड़कर सदा काल-धर्म का आचरण करना चाहिए।

संसार के सभी प्राणियों को धर्म करने का उपदेश

सुखितस्य दुःखितस्य च संसारे धर्मएव तव कार्यः।
सुखितस्य तदभिवृद्धयै दुःखभुजस्तदुपघाताय।। (18) आत्मा.

अर्थ-(हे जीव!) तू संसार में सुखी हो या दुःखी तुझे धर्म ही करना योग्य है। जो सुखी है, उसे सुख बढ़ाने के लिए और जो दुःखी है उसे दुःख का नाश करने के लिए धर्म ही करना चाहिए।

विषय सुख भोगते हुए भी धर्म की रक्षा करने के प्रेरणा

धर्मारामतरूणां फलानि सर्वेन्द्रियार्थ सौख्यानि।
संरक्ष्य तांस्ततस्तान्युच्चिनु यैस्तैरूपायैस्त्वम्।। (19) आत्मा.

अर्थ-समस्त इन्द्रिय विषयों के सुख धर्मरूपी बाग के सम्यक् और संयमादिक वृक्षों के फल हैं। इसलिए तू किसी भी उपाय से उन वृक्षों को सुरक्षित रखकर उनसे फल को ग्रहण कर।

धर्माचरण से सुख भंग होने के भय का निराकरण

धर्मः सुखस्य हेतुर्हेतुर्न विराधकः स्वकार्यस्य।

तस्मात् सुखभंगधिया मा धर्मस्य विमुखस्त्वम्।। (20) आत्मा.

अर्थ-धर्म सुख का कारण है और जो सुख का कारण होता है, वह अपने कार्य का विरोधी नहीं होता, इसलिए तू सुख-भंग होने का भय करके धर्म से विमुख मत हो।

कृषक के उदाहरण से धर्म रक्षा की प्रेरणा

धर्मादवाप्तविभवो धर्मं प्रतिपाल्य भोगमनुभवतु।
बीजादवाप्तधान्यः कृषीवलस्तस्य बीजमिव।। (21) आत्मा.

अर्थ-जिस प्रकार बीज से अन्न प्राप्त करने वाला किसान उस अन्न के बीज को सुरक्षित रखता है, उसी प्रकार जिस जीव ने धर्म से सुख-संपत्ति रूप वैभव प्राप्त किया है, उसे धर्म का पालन करते हुए भोग भोगना चाहिए।

धर्म का फल बिना माँगे ही प्राप्त होता है

संकल्प्यं कल्पवृक्षस्य चिन्त्यं चिन्तामणेरपि।
असंकल्प्यमसंचिन्त्यं फलं धर्मादवाप्यते।। (22) आत्मा.

अर्थ-कल्पवृक्ष का फल तो संकल्प योग्य वचनों से याचन करने पर मिलता है और चिन्तामणि का फल भी चिन्तवन योग्य मन द्वारा याचना करने पर मिलता है, परन्तु धर्म से ऐसा अद्भुत फल मिलता है, जो संकल्प और चिन्तन योग्य नहीं; अर्थात् उसकी प्राप्ति के लिए संकल्प या चिन्तवन की आवश्यकता नहीं है।

आत्मा के परिणामों से ही पुण्य और पाप की उत्पत्ति

परिणाममेव कारणमाहुः खलुः पुण्यपापयोप्राज्ञाः।
तस्मात् पापापचयः पुण्योपचयश्च सुविधेयः।। (23)

अर्थ-बुद्धिमान पुरुष निश्चय से आत्मा के परिणाम (भावों) को ही पुण्य-पाप का कारण कहते हैं, इसलिए भले प्रकार से पाप का नाश और पुण्य का संचय करना चाहिए।

धर्म संचय न करने वालों की निन्दा

कृत्वा धर्मविघातं विषयसुखान्यनुभवन्ति ये मोहात्।
आच्छिद्य तरून्मूलात् फलानि गृहन्ति ते पापाः।। (24)

अर्थ-जो जीव मोह या भ्रम के कारण धर्म का घात करते हुए विषय सुख को भोगते हैं, वे पापी वृक्ष को मूल से उखाड़ कर फलों को ग्रहण करते हैं।

विषय सुख भोगते हुए भी धर्मोपार्जन संभव है

कर्तृत्व हेतु कर्तृत्वानुमतैः स्मरण चरणवचनेषु।

यः सर्वथाभिगम्यः स कथं धर्मो न संग्राह्यः।। (25) आत्मा.

अर्थ-जो धर्म कृत, कारित, अनुमोदना के साथ मन, वचन, काय के द्वारा सर्व प्रकार से प्राप्त करने योग्य है, उसका संग्रह क्यों नहीं करना चाहिए?

शब्दार्थ-कृत=कर्त्तापना, कारित=कार्य के हेतुओं (कारणों) का कर्त्तापना, अनुमोदन=कर्त्ता के अनुसार अभिप्राय रखना, स्मरण=मन में विचार करना, वचन=भाषारूप वचन बोलना, आचरण=काया द्वारा अंगीकार करना।

लौकिक जीवों की मूर्खतापूर्ण प्रवृत्ति

पिता पुत्रं पुत्रः पितरमभिसंधाय बहुधा।

विमोहादीहते सुखलवमवाप्तुं नृपपदम्।।

अहो मुग्धो लोको मृतिजनन दंष्ट्रान्तरगतो।

न पश्यत्यश्रान्तं तनुमपहरन्तं यममुम्।। (34) (आत्मानुशासन)

मोह के कारण जिसमें सुख का अंश भासित होता है ऐसे राजपद की अभिलाषा से पिता पुत्र को पुत्र पिता को ठगता है। अहो! बड़ा आश्चर्य है कि मूर्ख लोग जन्म-मरण रूपी दाढ़ के मध्य में स्थित, शरीर को निरंतर हरण करने वाले यम को नहीं देखते हैं।

''विषयान्ध पुरुष की दुर्दशा का वर्णन''

अन्धादयं महानन्धो विषयान्धीकृतेक्षणः।

चक्षुषाऽन्धो न जानाति विषयान्धो न केनचित्।। (35)

जिसके सम्यग्ज्ञानरूपी नेत्र विषयों से अंधे हो रहे हैं, वह अंधों से भी महाअंध है; क्योंकि जो अंधा है वह मात्र नेत्रों से ही नहीं जान पाता, परन्तु जो विषयों से अंधा है वह किसी भी इन्द्रिय से नहीं जानता।

''विषयाभिलाषा की व्यर्थता''

आशागर्तः प्रतिप्राणि यस्मिन् विश्वमणूपमम्।

कस्य किं कियदायाति वृथा वो विषयैषिता।। (36)

अहो प्राणी! प्रत्येक प्राणी में आशारूपी गड्ढा इतना गहरा है कि जिसमें तीन लोक की विभूति अणु के समान सूक्ष्म है। यदि तीन लोक की विभूति एक प्राणी को

मिल जाये तो भी उसकी तृष्णा शांत नहीं होगी, तो फिर बँटवारे में किसको कितनी विभूति मिलेगी, (कि सबकी तृष्णा शांत हो जाये) इसलिये तेरी विषयों की इच्छा व्यर्थ है।

''पुण्योपार्जन की प्रेरणा''

आयुः श्री वपुरादिकं यदि भवेत् पुण्य पुरोपार्जितं,
स्यात् सर्वं न भवेन्न तच्च नितरामायातितेऽप्यात्मनि।
इत्यार्याः सुविचार्य कार्य कुशलाः कार्येऽत्र मंदोद्यमा,
द्रागागामिमिवार्थमेव सततं प्रीत्या यतन्तेतराम्।। (37)

इस जीव को देव-मनुष्य आदि भवों में दीर्घायु, लक्ष्मी, सुंदर शरीरादि पूर्वजन्म में उपार्जित पुण्य से होते हैं। जिसने पुण्योपार्जन किया है, उसे सभी अनुकूलताएँ होती हैं। यदि पूर्वकृत पुण्य न हो तो अनेक प्रयत्न करके खेद करने पर भी कुछ भी प्राप्ति नहीं होती। इसलिए कार्यकुशल पुरुष भलीभाँति विचार करके वर्तमान भव संबंधी कार्य में मंद उद्यमी होते हैं और आगामी भव के कार्य में तत्काल प्रीति सहित निरंतर अत्यंत प्रयत्न करते हैं।

''परिग्रह त्याग की प्रेरणा''

साम्राज्यं कथमप्यवाप्य सुचिरात् संसार सारं पुनः,
त्यत्त्यक्त्वैव यदि क्षितीश्वरवराः प्राप्ताः श्रियं शाश्वतीम्।
त्वं प्रागेव परिग्रहान् परिहरत्याज्यान् गृहीत्वापि ते,
मा भूर्भौतिकमोदकव्यतिकरं संपाद्य हास्यास्पदम्।। (40)

हे भव्य! किसी पुण्य के उदय से संसार में सारभूत (सर्वश्रेष्ठ) चक्रवर्ती पद को चिरकाल भोगकर भी पूर्व में बड़े-बड़े राजाओं ने शाश्वत निर्वाण पद को प्राप्त किया, अतः परिग्रह त्याग को ही निर्वाण पद का कारण जानकर तू परिग्रह का त्याग करके कुमारावस्था में ही मुनिपद धारण कर। बाल-ब्रह्मचर्य के समान श्रेष्ठ अन्य कोई नहीं है। यह परिग्रह, त्याग करने योग्य ही है। जिन्होंने चक्रवर्ती पद भोगा इसने भी उसका त्याग किया तभी वे मुक्त हुए। जो राज्य नहीं करते और विवाह नहीं करते उसके समान और कोई नहीं है। यदि तू सोचता है कि पहले परिग्रहण ग्रहण करूँगा, फिर त्याग करूँगा तो तू कीचड़ में पड़े हुए लड्डू को उठाने वाले नेपधारी के समान लोक में हास्यास्पद मूर्खता मत कर।

''आशारूपी अग्नि से दग्ध व्यक्ति की चेष्टा''

आशाहुताशनग्रस्त - वस्तूच्चैर्वंशजां जनः।
हा किलैत्य सुखच्छायां दुःखधर्मापनोदिनः।। (43)

आशारूपी अग्नि से दग्ध तथा कनक, कामिनी आदि वस्तुओं को निश्चय से भला जानने वाला व्यक्ति गर्मी में शीतलता प्राप्त करने के लिए बाँस की छाया ग्रहण करता है, परन्तु उसका यह प्रयास व्यर्थ है क्योंकि उससे धूप की गर्मी नहीं मिटती।

''धर्म, सुख, ज्ञान और गति का स्वरूप''

स धर्मो यत्र नाधर्मसतत्सुखं यत्र नासुखम्।
तज्ज्ञानं यत्र नाज्ञानं सा गतिर्यत्र नागतिः।। (46)

धर्म वही है जिसमें अधर्म नहीं; सुख वही है; जिसमें दुःख नहीं; ज्ञान वही है, जिसमें अज्ञान नहीं और गति वही है, जिसमें आगति (पुनरागमन) नहीं। जहाँ लेश मात्र भी हिंसादि पाप है, वहाँ धर्म नहीं है, जहाँ संक्लेश रूप दुःख है, वहाँ सुख नहीं जहाँ संदेहरूप अज्ञान है, वहाँ ज्ञान नहीं है और जहाँ जाकर पुनः आना पड़े अर्थात् जन्म-मरण हो, वहाँ गति नहीं है।

वार्तादिभिर्विषयलोल विचार शून्यं,
क्लिश्नासि यन्मुहुरिहार्थपरिगहार्थम्।
तच्चेष्टितं यदि सकृत परलोक बुद्ध्या,
न प्राप्यते ननु पुनर्जननादि दुःखम्।। (47)

हे विषय-लोलुपी! विचारहीन!! इस लोक में धनोपार्जन के लिए असि, मसि, कृषि, वाणिज्यादि प्रयत्नों से तू जो कष्ट बारम्बार करता है, यदि एक बार परलोक के लिए ऐसा प्रयत्न करे तो तुझे जन्म-मरणादि दुःख न होंगे। अतः तू धन का साधन छोड़कर धर्म का साधन कर।

जहरीली हवा से एक साल में दिल्ली के 860 बच्चों को हुआ कैंसर

दिल्ली की हवा में घुल रही जहरीली हवा की सबसे बड़ी मार बच्चों को बुरी तरह से प्रभावित करने लगी है। पिछले साल भर में राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर

हुए विभिन्न शोध अब साफ-साफ बताने लगे हैं कि दिल्ली के 14 साल के कम उम्र के बच्चों में अस्थमा से लेकर कैंसर जैसी घातक बीमारियाँ सबसे ज्यादा होने लगी हैं।

हाल ही में इंडियन काउंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च (आईसीएमआर) की ओर से जारी कैंसर रजिस्ट्री के अनुसार 14 साल से कम उम्र के बच्चों में कैंसर के नये मामलों की दर दिल्ली में सबसे ज्यादा है। दिल्ली में पिछले साल सामने आये कैंसर के कुल मामलों में से 551 (5.4%) लड़के और 309 (3.2%) लड़कियाँ थीं जिनकी उम्र 14 साल से कम थी। प्रदूषण से दिल्ली के बच्चों में कैंसर होने की बात ब्रिटेन की एक यूनिवर्सिटी ने भी बताई है। 2015 में ब्रिटेन की न्यूकासल यूनिवर्सिटी ने अपने शोध में कहा है कि वातावरण में जहरीली हवाओं के कारण बच्चों में न्यूरोब्लास्टिक कैंसर की संभावना बढ़ सकती है। शोध में यह भी जिक्र किया गया है कि अगर हवा में जहरीली गैस की मात्रा ज्यादा होती है तो ब्रेन और स्पाइनल कॉर्ड का कैंसर होने का खतरा बढ़ जाता है।

10 में से चार फेफड़े की समस्या से प्रभावित–कुछ समय पहले 'हील फाउंडेशन' ने अपने शोध में पाया है कि दिल्ली में रहने वाले बच्चों के फेफड़े अन्य राज्यों के बच्चों की तुलना में सबसे ज्यादा कमजोर पाये गये हैं। देश के बड़े महानगरों पर आधारित शोध में हील फाउंडेशन ने दावा किया है कि दिल्ली में हर दस बच्चों में से चार बच्चे फेफड़े की घातक स्तर की परेशानी से जूझ रहे हैं।

15-20% बच्चे आते हैं साँस की समस्या लेकर–बीएलके अस्पताल में बच्चों के विशेषज्ञ डॉ. जे.एस. भसीन का कहना है कि जाँच के लिए आने वाले औसतन सौ में से लगभग 15-20 बच्चे साँस में तकलीफ या गंदी हवा से एलर्जी की शिकायत करते हैं। स्मोग की समस्या मामले को और गंभीर बना देती है। हम हमेशा यह सलाह देते हैं कि ज्यादा धुंध होने और हवा नहीं चलने पर बच्चों को बाहर न भेजें।

महानगरों के बच्चों का हाल बहुत अच्छा नहीं–हील फाउंडेशन ने सर्वे में महानगरों के लगभग 2000 स्कूलों को शामिल किया था। शोध में जहाँ दिल्ली के 40 फीसदी बच्चों के फेफड़े सबसे खराब पाये गये। वहीं बैंगलुरु में लगभग 36 फीसदी बच्चों में यह समस्या देखने को मिली। 35 फीसदी बच्चों के साथ कोलकाता तीसरे स्थान पर है और मुंबई में मात्र 27 प्रतिशत बच्चों में फेफड़ों की समस्या पाई गई।

देश में 10 में 8 लोग जहरीली हवा में साँस ले रहे हैं-हाल ही में विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) ने भी दिल्ली के वातावरण में मौजूद हवाओं को सबसे जहरीला करार दिया है। इस साल मई महीने में जारी डब्ल्यूएचओ की रिपोर्ट के अनुसार राजधानी दिल्ली में एमपी 2.5 का औसत स्तर 122 है। रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि देश के हर दस में से आठ लोग जहरीली हवा में साँस ले रहे हैं।

यूनीसेफ ने हाल के विश्लेषण में कहा था कि विश्व में-30 करोड़ बच्चे दुनिया के ऐसे इलाकों में रहते हैं जहाँ वायू प्रदूषण का सबसे जहरीला स्तर है जो कि अंतर्राष्ट्रीय दिशा-निर्देशों से छह गुना अधिक है।

अंतर्राष्ट्रीय ऊर्जा एजेंसी (आईईए) की रिपोर्ट के अनुसार 2015 में-5.90 करोड़ लोगों की समय पूर्व मौत हुई बाह्य वायु प्रदूषण की वजह से। इसके अतिरिक्त 10 लाख समय पूर्व मौतें घरेलू वायु प्रदूषण की वजह से हुई थी।

प्रदूषित हवा से बच्चों को ऐसे बचायें

डॉ. जसजीत सिंह भसीन
सीनियर कंसल्टेंट एवं एचओडी पीडियाट्रिक
बीएलके हॉस्पिटल, नई दिल्ली

पूरी दुनिया में होने वाले लगभग 60 प्रतिशत साँस के संक्रमण खराब पर्यावरण के चलते होते हैं। सर्दियों में वायु प्रदूषण का पहला प्रभाव बच्चों पर पड़ता है। सुबह की हवा में प्रदूषक तत्त्व सबसे ज्यादा पाये जाते हैं और बच्चे अपने स्कूल की बस का इंतजार करते हुए सीधे इस हवा में साँस लेते हैं। डब्ल्यूएचओ 2016 की रिपोर्ट, 'एम्बिएंट एयर पॉल्यूशन : ए ग्लोबल एसेसमेंट ऑफ एक्सपोजर एण्ड बर्डन ऑफ डिजीज' में बताया गया है कि भारत के लोगों को वायु प्रदूषण एवं श्वास की बीमारियों का खतरा है। रिपोर्ट में कहा गया है कि बढ़ते अस्थमा एवं बच्चों में श्वास के संक्रमण का प्रमुख कारण वायु प्रदूषण है।

इसी रिपोर्ट के अनुसार एक्यूट रेस्पिरेटरी संक्रमण से हर साल लगभग 16 लाख बच्चे पाँच साल से कम आयु में ही मौत का शिकार हो जाते हैं। वायु प्रदूषण महिलाओं, बच्चों और वृद्धों के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव डाल रहा है।

इस तरह की होती है समस्या-श्वास की बीमारियों में अस्थमा जैसी समस्याएँ बच्चों में लंबे समय तक टिकती हैं और अलग-अलग बच्चों में अस्थमा के

लक्षण अलग-अलग होते हैं। कुछ बच्चे सारी रात खाँसते हैं लेकिन दिन में कोई लक्षण नहीं दिखाई देते हैं, जबकि कुछ बच्चों की छाती में कफ जम जाता है। ऐसे में मेडिकल सलाह और उचित दवाई जरूरी है।

बच्चों को सुरक्षित रखने के लिए ध्यान रखिये–बच्चों का शरीर बैक्टीरिया एवं दूसरे संक्रमणों को आसानी से नहीं रोक पाता है, क्योंकि उनकी प्रतिरोधी क्षमता विकसित हो रही होती हैं। बच्चों को प्रदूषण या फिर अन्य खतरों की वजह से ये संक्रमण न हो इसलिए बच्चों के कान एवं गर्दन को गर्म कपड़ों से ढककर रखना चाहिए या फिर बाहर घूमते वक्त गैस मास्क पहनायें।

आहार में विटामिन सी एवं विटामिन डी जैसे महत्वपूर्ण विटामिनों की मात्रा ज्यादा रखिये। संतरे, स्ट्रॉबरी, पपीते जैसे अन्य मौसमी फल प्रतिरोधी शक्ति के विकास के लिए महत्वपूर्ण विकल्प है। बीमारियों को दूर रखने के लिए रोज सुबह कुचली हुई गूजबरी या शहद के साथ आँवला खाना चाहिए। नाश्ते से पहले शहद और ऑलिव ऑयल की बराबर मात्रा के साथ लहसून मिला गर्म दूध पीने से अस्थमा एवं श्वास की समस्याओं में आराम मिल सकता है।

बाहर के खाने से बचना चाहिए क्योंकि बाहर के खाने पर प्रदूषण के कण जम जाते हैं, जो सीधे आपके पेट में जाते है। पानी और खाने की अगर सही सुरक्षा न की जाये, तो उनके लेड से प्रदूषित होने का गंभीर खतरा रहता है। आहार में प्रो-बायोटिक्स जैसे बोगर्ट एवं दूध के उत्पाद शामिल होने चाहिए, ये बच्चों की प्रतिरोधी क्षमता बढ़ाते है।

दूषित हवा भी बढ़ा रही मोटापा और शुगर

साँस लीजिए... लेकिन जरा संभल कर। क्योंकि ये हवा आपका मोटापा बढ़ा सकती है। यही नहीं डायबिटीज और ब्लड प्रेशर जैसी बीमारियाँ भी इस हवा के जरिये ही आपके शरीर में प्रवेश कर सकती हैं। बढ़ते प्रदूषण के मद्देनजर ऐसे कई शोध सामने आये हैं, जिसमें मोटापे और प्रदूषण के संबंध को दर्शाया गया है।

अध्ययनों के मुताबिक एक जैसी डाइट लेने और एक्सरसाइज करने के बावजूद वह व्यक्ति दूसरे की तुलना में ज्यादा मोटा होता है, जो शहर के प्रदूषित वातावरण में रहता है। हालाँकि इसके प्रभाव सामने आने में कई साल लग जाते हैं।

ट्रैफिक, सिगरेट व स्मॉग मुख्य समस्या-कनाडा की टोरंटों यूनिवर्सिटी के अध्ययनकर्ता होंग चेन के मुताबिक सबसे ज्यादा चिंता ट्रैफिक और सिगरेट के धुएँ और स्मॉग को लेकर है। धुएँ के बहुत ही छोटे कण हवा में मिलकर हमारे शरीर में प्रवेश कर जाते हैं और फैट बर्न करने की क्षमता को कम कर देते हैं। लंबे समय तक ऐसे माहौल में रहने से डायबिटीज और हाई ब्लड प्रेशर जैसी गंभीर बीमारियाँ भी हो सकती हैं।

एशियाई शहरों में ज्यादा खतरा-14 साल में 62 हजार लोगों पर किये परीक्षण में पाया गया कि हवा में 10 माइक्रोग्राम बारीक कणों से डायबिटीज का खतरा 11 फीसदी बढ़ गया।

धुएँ की जद में दुनिया

धूम्रपान से 2030 तक 80 लाख लोगों की मौत

विश्वभर में धूम्रपान करने से लोगों की मौतें लगातार हो रही है। धूम्रपान नहीं छोड़ा तो 2030 तक 80 लाख लोगों की इससे मौत होगी। विश्व स्वास्थ्य संगठन के आँकड़ों में इसका खुलासा हुआ। 60 लाख की मौत हर साल धूम्रपान से होती है दुनियाभर में। 80 लाख लोगों की मौत होगी सिगरेट पीने से 2030 तक।

एक व्यक्ति रोज कितनी सिगरेट पी रहा-इंडोनेशिया 29.2, चीन 24.1, पाकिस्तान 11.5, भारत 10.7, तुर्की 23.8, बांग्लादेश 20.9, अर्जेनटीना 17.1, अमरीका 13.7, कतर 9.5, पनामा 2.8 औसत। एशिया में धूम्रपान करने वालों में 10 गुना इजाफा।

दिखावे के लिए शॉपिंग करते हैं युवा

देशभर के युवा जरूरत के मुकाबले दिखावे के लिए शॉपिंग करते हैं। इनकी संख्या 66 फीसदी है। मार्स यूथ सर्वे 2016 में इसकी तस्दीक हुई।

कितना दिखावा 18-25 साल की उम्र वालों पर किया सर्वे-65 प्रतिशत लड़कियाँ, लड़के 35 प्रतिशत, दिखावे की शॉपिंग 66 प्रतिशत।

कितने युवा बदलते है ब्रांड-33 प्रतिशत पुरुष, 33.9 प्रतिशत महिलाएँ।

खरीददारी से पहले चर्चा-49.8 प्रतिशत पुरुष, 54.1 प्रतिशत महिलाएँ।

जरूरत से ज्यादा कपड़े-35.9 प्रतिशत पुरुष, 40.7 प्रतिशत महिलाएँ।

ज्यादा डियोड्रेंट-28.3 प्रतिशत पुरुष, 32.4 प्रतिशत महिलाएँ।

एड के झाँसे में आते हैं-39.6 प्रतिशत पुरुष, 36 प्रतिशत महिलाएँ।

सर्च कर मोबाईल खरीद-60.8 प्रतिशत पुरुष, 67.2 प्रतिशत महिलाएँ।

मात्र 8 देशों के पास मौजूद हैं 15,405 परमाणु हथियार

वर्तमान दौर में अमेरिका-चीन और अमेरिका-रूस के संबंध उतने ठीक नहीं हैं, जितने तीन साल पहले हुआ करते थे। अमेरिका में राष्ट्रपति चुनाव के दौरान अमेरिका-रूस के संबंधों में खटास बढ़ी और दक्षिण चीन सागर में जल परिवहन के अंतर्राष्ट्रीय मार्ग को लेकर अमेरिका-चीन के संबंध पहले से तनावपूर्ण हैं। इस वातावरण में उच्च स्तर की कूटनीति और धमकियों के बीच रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन ने सेना को 'तैयार' रहने के लिए कहा है। ऐसे में कहीं न कहीं परमाणु हथियों की तैनाती की बात भी सामने आती है।

अमेरिका और रूस ने पिछले दशक में परमाणु हथियारों के जखीरे में कटौती के जबर्दस्त प्रयास किये हैं और इस पहल की शुरुआत बराक ओबामा ने की थी। उसमें कुछ सफलता मिली भी है। फिर भी 8 देश ऐसे हैं, जिनके पास परमाणु हथियार हैं, उनमें भी दो देशों के पास सर्वाधिक हैं। वे देश रूप और अमेरिका हैं। इजराइल के पास भी परमाणु हथियार हैं, लेकिन उसके कार्यक्रम की कभी आधिकारिक सूचना सामने नहीं आई है। विश्लेषक मानते हैं कि इजराइल के पास कम से कम 80 परमाणु हथियार होंगे। वर्ष 1950 के दशक में अमेरिका के साथ-साथ रूस ने अपने परमाणु जखीरे में बढ़ोत्तरी की। शीत युद्ध के दौर में यह सर्वाधिक थी। वर्ष 1965-67 में अमेरिका के पास 30 हजार से अधिक परमाणु हथियार थे, जबकि वर्ष 1985-87 के दौरान रूप के पास 40 हजार से अधिक। उसके बाद से लगातार इनमें कटौती हुई है। वर्तमान में परमाणु हथियारों की संख्या जानिये-रूस-7300, अमेरिका-7000, फ्रांस-300, चीन-260, ब्रिटेन-215, भारत-130, पाकिस्तान-120, इजराइल-80 यह वर्ष 2016 की स्थिति है।

उत्तर कोरिया का परमाणु कार्यक्रम बहुत गोपनीय है, लेकिन विश्लेषक बताते हैं कि उसके पास 10 से कम ऐसे हथियार हैं।

अमेरिका-रूस के कुल परमाणु हथियारों में केवल एक तिहाई को तैनात किया गया है, जबकि शेष को डिस्मेंटल के लिए रिजर्व रखा गया हैं।

वैयावृत्ति (सेवा-दान) जो नहीं करते वे धर्मबाह्य

(वैयावृत्ति से स्वर्ग से ले मोक्ष तो वैयावृत्ति से रहित दुर्गति)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छिप गया कोई रे.....)

(यह कविता भगवती आराधना की गाथा नं. 306 से 381 के आधार पर बनी है।)

वैयावृत्ति महान् है..पापी नहीं करते...सातिशय पुण्यशाली..धर्मात्मा करते...
जीवन्त धर्म यह..वैयावृत्ति महान्...भक्ति से ले अंतरंग..तप ये महान्...(ध्रुव)...

वैयावृत्ति से बनते हैं..तीर्थंकर महान्...स्वर्ग से लेकर पाते..परिनिर्वाण...
वैयावृत्ति से रहित..जो होते वे पापी...चौरासी लक्ष योनि..में वे पाते दुर्गति...(1)...

जो करते वैयावृत्ति..सामर्थ्य अनुसार...दान सेवा सहयोग..व्यवस्था-परोपकार...
आबाल वृद्ध वनिता..पशु-पक्षी-देव...यथायोग्य पाते भोग..भूमि से मोक्ष तक...(2)...

जो न करते वैयावृत्ति..पाते वे दुर्गति...धर्म से रहित वे..होते कुदृष्टि...
तीर्थंकरों की आज्ञा भंग..करते वे पापी...जिनवाणी की अवज्ञा..करते वे पापी...(3)...

आचार का होता लोप..आत्मा का त्याग...होता साधुवर्ग व..प्रवचन का त्याग...
अंतरंग तप बिना..होता आत्म-त्याग...साधु वैयावृत्ति बिन..साधु वर्ग त्याग...(4)...

शास्त्रोक्त विविध त्याग से..शास्त्र का त्याग...जिससे होता त्याग..श्रद्धा-वात्सल्य...
भक्ति व पात्र लाभ..गुणों के संधान...तप-धर्म-तीर्थ व..समाधि-विच्छेदन...(5)...

दान दया सेवा से जो..आनंद मिलता...वैयावृत्ति बिना वह..कहाँ मिल पाता...
तन-मन-आत्मा भी..स्वस्थ्य न होते...आदर-सत्कार..बहुमान भी न मिलते...(6)...

प्रेम-संगठन व..वात्सल्य न होते...उदार-पावन-निःस्वार्थ..भाव न होते...
वैयावृत्ति से उक्त..दुर्गुण दूर होते...'कनक' वैयावृत्ति को..अतएव चाहते...(7)...

सीपुर, दिनांक 17.12.2016, रात्रि 8.17

(आधुनिक विदेशी वैज्ञानिकों ने 1938 से लेकर अभी तक (यानी 75 वर्ष में) यह सिद्ध किया है कि पैसे से केवल 1% सुख मिलता है, परन्तु प्यार, सहयोग, परोपकार, दान आदि से उससे 7 गुणा (7%) सुख मिलता है। तनाव, उदासीनता आदि दूर होने से 20% सुख मिलता है तो गरीबी दूर होने से 5% सुख मिलता है।)

सेज्जागासणिसेज्जा उवधी पडिलेहणाउवग्गहिदे।

आहारोसहवायणविकिंचणुव्वत्तणादीसु।। (307)

सोने के स्थान, बैठने के स्थान और उपकरणों की प्रतिलेखना करना, योग्य आहार, योग्य औषध का देना, स्वाध्याय कराना, अशक्त मुनि के शरीर के मल को शोधन करना, एक करवट से दूसरी करवट लिटाना ये उपकार वैयावृत्य है।

अद्धाणतेण सावयरायणदीरोधगासिवे ऊमे।

वेज्जावच्चं उत्तं संगहसारक्खणोवेदं।। (308)

जो मुनि मार्ग के श्रम से थक गये हैं उनके पैर आदि दबाना, जिन्हें चोरों ने सताया है, जंगली जानवरों से, दुष्ट राजा से, नदी को रोकने वालों से और मारी रोग से जो पीड़ित है विद्या आदि से उनका उपद्रव दूर करना, जो दुर्भिक्ष में फँसे है उन्हें सुभिक्ष देश में लाना, आप न डरे इत्यादि रूप से उन्हें धैर्य बंधाना तथा उनका संरक्षण करना वैयावृत्य कहा है।

वैयावृत्य न करने की निन्दा करते हैं

अणिगुहिदबलविरिओ वेज्जावच्चं जिणोवदेसेण।

जदि ण करेदि समत्थो संतो सो होदि णिद्धम्मो।। (309)

अपने बल और वीर्य को न छिपाने वाला जो मुनि समर्थ होते हुए भी जिन भगवान् के द्वारा कहे हुए क्रम के अनुसार यदि वैयावृत्ति नहीं करता है तो वह धर्म से बहिष्कृत हो जाता है यह इस गाथा का अभिप्राय है।

तित्थयराणाकोवो सुदधम्मविराधणा अणायारो।

अप्पापरोपवयणं च तेण णिज्जूहिंद होदि।। (310)

वैयावृत्ति न करने से तीर्थंकरों की आज्ञा का भंग होता है। शास्त्र में कहे गये धर्म का नाश होता है। आचार का लोप होता है और उस व्यक्ति के द्वारा आत्मा, साधुवर्ग और प्रवचन का परित्याग होता है। तप में उद्योग न करने से आत्मा का त्याग होता है। आपत्ति में उपकार न करने से मुनिवर्ग का त्याग होता है और शास्त्र विहित आचरण न करने से आगम का त्याग होता है।

गुणपरिणामो सड्ढा वच्छल्लं भत्तिपत्तलंभो य?

संधाणं तव पूया अव्वोतिच्छत्ती समाधी य।। (311)

वैयावृत्ति करने का पहला गुण है 'गुण परिणाम' अर्थात् जो वैयावृत्ति करता है

उसकी पीड़ित साधु के गुणों में वासना होती है कि मैं भी ऐसा बनूँ और जिस साधु की वैयावृत्ति की जाती है उसकी सम्यक्त्व आदि गुणों में विशेष प्रवृत्ति होती है। इसके सिवाय श्रद्धा, वात्सल्य, भक्ति, पात्र का लाभ, संधान अपने में गुण पूजा छूट गये हैं इनका पुनः आरोपण, तप, धर्म, तीर्थ की परंपरा का विच्छेद न होना तथा समाधि ये गुण हैं।

कब ये 'मम' तन विनाश होगा-स्वयं में लय होऊँगा

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : झिलमिल सितारों का....., आत्मशक्ति.....)

कब ये मम तन विनाश होगा, शुद्ध-बुद्ध-आनंद-अमूर्त बनूँगा।
जन्म-जरा-मरण रहित हूँगा, आधि-व्याधि-क्षुधा-तृष्णा रहित हूँगा।। (1)

शरीर अभाव से न होंगे मन इन्द्रिय, राग द्वेष मोह काम क्रोधादि विषय।
अहंकार ममकार भी होंगे विनाश, शत्रु-मित्र अपना-पराया अशेष।। (2)

संसार परिभ्रमण भी हो जायेगा शून्य, चौरासी लक्ष्य योनि चतुर्गति भी शून्य।
संकल्प-विकल्प संक्लेश भी न होंगे, आकर्षण-विकर्षण द्वंद्व भी न होंगे।। (3)

हिंसा झूठ चोरी कुशील परिग्रह भी शून्य, फैशन-व्यसन-आडम्बर भी शून्य।
ढोंग-पाखण्ड मायाचारी न होंगे, काम भोग बंध प्रपंच भी न होंगे।। (4)

ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि भी शून्य, प्रभुत्व-विभुत्व ऐश्वर्य से पूर्ण।
समस्त पर संबंध बंधन शून्य, अस्तित्व-वस्तुत्व-प्रमेयत्व से पूर्ण।। (5)

छोटा-बड़ा-धनी-गरीब से शून्य, ऊँच-नीच भेद-भाव भी विलीन।
मालिक-मजदूर स्वामी-सेवक शून्य, स्वयं ही कर्त्ता-धर्त्ता-भोक्ता से पूर्ण।। (6)

लौकिक समस्त रीति-रिवाज शून्य, पंथ-मत-जाति-भाषा-राष्ट्र विलीन।
स्वयं ही बनूँगा मैं अभिन्न षट्कारकमय, 'कनकनन्दी' का लक्ष्य स्वयं में ही लय।। (7)

सीपुर, दिनांक 22.12.2016, रात्रि 5.24

संदर्भ-

माता जातिः पिता मृत्युराधिव्याधी सहोद्गतौ।
प्रान्ते जन्तोर्जरा मित्रं तथाप्याशा शरीर के।। (201) (आत्मा.)

शुद्धोऽप्यशेषविषयावगमोऽप्यमूर्तोऽप्यात्मन् त्वमप्यतितरामशुचीकृतोऽसि।

यदि किसी कुटुम्ब में स्थित व्यक्ति के माता-पिता, भाई-बंधु एवं मित्र आदि सब ही प्रतिकूल स्वभाव वाले हो तो ऐसे कुटुम्ब से संबंध रखने वाले उस व्यक्ति से किसी को भी अनुराग नहीं रहता है। परन्तु आश्चर्य की बात है कि यह अज्ञानी प्राणी ऐसे प्रतिकूल कुटुम्ब के बीच में रहने वाले शरीर से भी कुछ आशा रखता हुआ उससे अनुराग करता है। उस शरीर के कुटुम्ब में उत्पत्ति (जन्म) माता और मरण पिता है जो परस्पर खूब अनुराग रखते हैं-एक के बिना दूसरा नहीं रहना चाहता है। जीव को जो शारीरिक एवं मानसिक कष्ट होते हैं वे उस शरीर के सहोदर हैं-उसके साथ में ही उत्पन्न होने वाले हैं। बुढ़ापा उसका प्यारा मित्र है। अभिप्राय यह है कि जिस शरीर के साथ जीव को निरंतर जन्म-मरण, रोग, चिंता एवं बुढ़ापा आदि के दुःसह दुःख सहने पड़ते हैं उससे अनुराग न रखकर उसे सदा के लिए ही छोड़ देने (मुक्त होने) का प्रयत्न करना चाहिए।

मूर्तं सदाशुचि विचेतनमन्यदत्र
कि वा न दूषयति धिग्धिगिदं शरीरम्।। (202)

हे आत्मन्! तू स्वभाव से शुद्ध, समस्त विषयों का ज्ञाता और रूप-रसादि से रहित (अमूर्तिक) हो करके भी उस शरीर के द्वारा अतिशय अपवित्र किया गया है। ठीक है-वह मूर्तिक, सदा अपवित्र और जड़ शरीर यहाँ कौनसी पवित्र वस्तु (गंध विलेपनादि) को मलिन नहीं करता है? अर्थात् सबको ही वह मलिन करता है। इसलिये ऐसे इस शरीर को बार-बार धिक्कार है।

हा हतोऽसि तरां जन्तो येनास्मिंस्तव सांप्रतम्।
ज्ञानं कायाशुचिज्ञानं तत्त्यागः किल साहसम्।। (203)

हे प्राणी! तू चूँकि इस शरीर के विषय में अतिशय दुःखी हुआ है इसीलिये उस शरीर के संबंध में जो तुझे इस समय अपवित्रता का ज्ञान हुआ है वह योग्य है। अब उस शरीर का परित्याग करना, यह तेरा अतिशय साहस होगा। विशेषार्थ-अभिप्राय यह है कि जो शरीर अत्यंत अपवित्र है उसे पवित्र मानकर यह अज्ञानी प्राणी अब तक दुःखी रहा है। इसलिये उसका कर्त्तव्य है कि उक्त शरीर के विषय में प्रथम तो वह 'यह अपवित्र है' ऐसे सम्यग्ज्ञान को प्राप्त करे और तत्पश्चात् उसे साहसपूर्वक छोड़ने का प्रयत्न करे। इस प्रकार से वह शरीर के निमित्त से जो दुःख सह रहा था उससे

छुटकारा पा जावेगा।

अपि रोगादिभिर्वृद्धैर्न यतिः खेदमृच्छति।
उडुपस्थस्य कः क्षोभः प्रवृद्धेऽपि नदीजले।। (204)

साधु अतिशय वृद्धि को प्राप्त हुए भी रोगादिकों के द्वारा खेद को नहीं प्राप्त होता है। ठीक है-नाव में स्थित प्राणी को नदी के जल में अधिक वृद्धि होने पर भी कौनसा भय होता है? अर्थात् उसे किसी प्रकार का भी भय नहीं होता है। विशेषार्थ-जिस प्रकार स्थिर नाव में बैठे हुए मनुष्य को नदी में जल के बढ़ जाने पर भी किसी प्रकार का खेद नहीं होता है। कारण कि वह यह समझता है कि नदी के जल में वृद्धि होने पर भी मैं इस नाव के सहारे से उसके पार जा पहुचूँगा। ठीक उसी प्रकार से जिसको शरीर का स्वभाव ज्ञात हो चुका है कि वह अपवित्र, रोगादि का घर तथा नश्वर है; वह विवेकी साधु उक्त शरीर के कठिन रोग से व्याप्त हो जाने पर भी किसी प्रकार से खेद को नहीं प्राप्त होता है।

जातामयः प्रतिविधाय तनौ वसेद्वा
नो चेत्तनुं त्यजतु वा द्वितयी गतिः स्यात्।
लग्नाग्निमावसति वह्निमपोह्य गेहं
निर्याय वा व्रजति तत्र सुधी किमास्ते।। (205)

रोग के उत्पन्न होने पर उसका औषधादि के द्वारा प्रतिकार करके उस शरीर में स्थित रहना चाहिए। परन्तु यदि रोग असाध्य हो और उसका प्रतिकार नहीं किया जा सकता हो तो फिर उस शरीर को छोड़ देना चाहिए, यह दूसरी अवस्था है। जैसे-यदि घर अग्नि से व्याप्त हो चुका है तो यथासंभव उस अग्नि को बुझाकर प्राणी उसी घर में रहता है। परन्तु यदि वह अग्नि नहीं बुझाई जा सकती है तो फिर उसमें रहने वाला प्राणी उस घर से निकलकर चला जाता है। क्या कोई बुद्धिमान् प्राणी उस जलते हुए घर में रहता है? अर्थात् नहीं रहता है।

शिरःस्थं भारमुत्तार्य स्कन्धे कृत्वा सुयत्नतः।
शरीरस्थेन भारेण अज्ञानी मन्यते सुखम्।। (206)

सिर के ऊपर स्थित भार को उतारकर और उसे प्रयत्नपूर्वक कंधे के ऊपर करके अज्ञानी प्राणी उस शरीरस्थ भार से सुख की कल्पना करता है। विशेषार्थ-जिस प्रकार कोई मनुष्य सिर के ऊपर रखे हुए बोझ से पीड़ित होता हुआ उसे प्रयत्नपूर्वक

सिर से उतारकर कंधे के ऊपर रखता है और उस अवस्था में अपने को सुखी मानता है। परन्तु वह अज्ञानी प्राणी यह नहीं सोचता कि वह बोझा तो अभी भी शरीर के ही ऊपर स्थित है। भेद इतना ही हुआ है कि उसे सिर से उतारकर कंधे पर रख लिया है और ऐसा करने से उसके कष्ट में कुछ थोड़ी-सी कमी अवश्य हुई है। परन्तु वास्तव में इससे उसे सुख का लेश भी नहीं प्राप्त हुआ है। ठीक इसी प्रकार से यह अविवेकी प्राणी भी शरीर में उत्पन्न हुए रोग को यथायोग्य औषधि आदि से नष्ट करके अपने को सुखी मानता है। परन्तु वह यह नहीं विचार करता कि रोगों का घर जो शरीर है उसका संयोग तो अभी भी बना है, ऐसी अवस्था में सुख भला कैसे प्राप्त हो सकता है? सच्चा सुख तो तब ही प्राप्त हो सकेगा जबकि उसका शरीर के साथ सदा के लिए संबंध छूट जायेगा। उसकी उपर्युक्त सुख की कल्पना तो ऐसी है जैसे कि सिर से बोझ को उतारकर उसे कंधे के ऊपर रखने वाला मनुष्य सुख की कल्पना करता है।

यावदस्ति प्रतीकारस्तावत्कुर्यात्प्रतिक्रियाम्।
तथाप्यनुपशान्तानामनुद्वेगः प्रतिक्रिया।। (207)

जब तक रोगों का प्रतिकार हो सकता है तब तक उसे करना चाहिए। परन्तु फिर भी यदि वे नष्ट नहीं होते हैं तो इससे खेद को प्राप्त नहीं होना चाहिए। यही वास्तव में उन रोगों का प्रतिकार है।

यदादाय भवेज्जन्मी त्यक्त्वा मुक्तो भविष्यति।
शरीरमेव तत्त्याज्यं किं शेषैः क्षुद्रकल्पनैः।। (208)

जिस शरीर को ग्रहण करके प्राणी जन्मवान् अर्थात् संसारी बना हुआ है तथा जिसको छोड़कर वह मुक्त हो जावेगा उस शरीर को ही छोड़ देना चाहिए। अन्य क्षुद्र विचारों से क्या प्रयोजन सिद्ध होने वाला है? कुछ भी नहीं।

नयेत् सर्वाशुचिप्रायः शरीरमपि पूज्यताम्।
सोऽप्यात्मा येन न स्पृश्यो दुश्चरित्रं धिगस्तु तत्।। (209)

जो आत्मा प्रायः करके सब ओर से अपवित्र ऐसे उस शरीर को भी पूज्य पद को प्राप्त कराता है उस आत्मा को भी जो शरीर स्पर्श के योग्य भी नहीं रहने देता है उसको धिक्कार है। विशेषार्थ-जीव जब संयम और तप आदि को धारण करता है तब उसका शरीर लोकवंद्य बन जाता है। इस प्रकार से जो आत्मा उस घृणित एवं अपवित्र शरीर को लोकपूज्य बनाता है उसका अनुकरण न कर वह शरीर उसे निंद्य

चाण्डालादि पर्याय में प्राप्त कराकर स्पर्श करने के योग्य भी नहीं रहने देता है। इस तरह उस शरीर को देव-मनुष्यादि के द्वारा पूज्य बनाकर आत्मा तो उसका उपकार करता है, परन्तु वह शरीर कृतघ्न होकर उस उपकारी आत्मा के साथ इतना दुष्टतापूर्ण आचरण करता है कि उसे निंद्य पर्याय में प्राप्त कराकर ऐसा हीन बना देता है कि विवेकी जन उसका स्पर्श भी नहीं करना चाहते हैं। अभिप्राय यह है कि जब आत्मा उस शरीर के संबंध से ही लोकनिंद्य होकर अनेक प्रकार के दुःखों को सहता है तब ऐसे अहितकर शरीर के संबंध को सदा के लिए छोड़ देना चाहिए।

रसादिराद्यो भागः स्याज्ज्ञानावृत्त्यादिरन्वतः।
ज्ञानादयस्तृतीयस्तु संसार्येवं त्रयात्मकः।। (210)

संसारी प्राणी का रस आदि सात धातुओं-रूप पहिला भाग है, इसके पश्चात् ज्ञानावरणादि कर्मों रूप उसका दूसरा भाग है तथा तीसरा भाग उसका ज्ञानादि रूप है; इस प्रकार से संसारी जीव तीन भाग स्वरूप है।

भागत्रयमयं नित्यमात्मानं बन्धवर्तिनम्।
भागद्वयात्पृथक् कर्तुं यो जानाति स तत्त्ववित्।। (211)

इस प्रकार इन तीन भागों स्वरूप व कर्मबंध से सहित नित्य आत्मा को जो प्रथम दो भागों से पृथक् करने के विधान को जानता है उसे तत्त्वज्ञानी समझना चाहिए। विशेषार्थ-ऊपर संसारी जीव को जिन तीन भागों स्वरूप बतलाया है उनमें प्रथम दो भाग-सप्त धातुमय शरीर और कार्मण शरीर-आत्म स्वरूप से भिन्न, जड़ एवं पौद्गलिक हैं तथा तीसरा भाग जो ज्ञानादि स्वरूप है वह आत्म स्वरूप चेतन है और वही उपादेय है। इस प्रकार जो जानता है तथा तदनुरूप आचरण भी करता है वह तत्त्वज्ञ है। इसके विपरीत जो प्रथम दो भागों को ही आत्मा समझता है और इसीलिये जो उनसे आत्मा को पृथक् करने का प्रयत्न नहीं करता है वह अज्ञानी है।

करोतु न चिरं घोरं तपः क्लेशासहो भवान्।
चित्तसाध्यान् कषायारीन् न जयेद्यत्तदज्ञता।। (212)

यदि तू कष्ट को न सहने के कारण घोर तप का आचरण नहीं कर सकता है तो न कर। परन्तु जो कषायादिक मन से सिद्ध करने योग्य हैं-जीतने योग्य हैं-उन्हें भी यदि नहीं जीतता है तो वह तेरी अज्ञानता है। विशेषार्थ-तपश्चरण में भूख आदि के दुःख को सहना पड़ता है, इसलिये यदि अनशन आदि तपों को नहीं किया जा सकता

है तो न भी किया जाय। परन्तु जो राग, द्वेष एवं क्रोधादि आत्मा का अहित करने वाले हैं उनको तो भले प्रकार से जीता जा सकता है। कारण कि उनके जीतने में न तो तप के समान कुछ कष्ट सहना पड़ता है और न मन के अतिरिक्त किसी अन्य सामग्री की अपेक्षा भी करनी पड़ती है। इसलिये उक्त राग-द्वेषादि को तो जीतना ही चाहिए। फिर यदि उनको भी प्राणी नहीं जीतना चाहता है तो यह उसकी अज्ञानता ही कही जावेगी।

हृदयसरसि यावन्निर्मलेऽप्यत्यगाधे
वसति खलु कषायग्राहचक्रं समन्तात्।
श्रयति गुणगुणोऽयं तन्न तावद्विशङ्कं
सयमशमविशेषैस्तान् विजेतुं यतस्व।। (213)

निर्मल और अथाह हृदय रूप सरोवर में जब तक कषायों रूप हिंस्र जल-जंतुओं का समूह निवास करता है तब तक निश्चय से यह उत्तम क्षमादि गुणों का समुदाय निःशंक होकर उस हृदय रूप सरोवर का आश्रय नहीं लेता है। इसीलिये हे भव्य! तू व्रतों के साथ तीव्र-मध्यमादि उपशम-भेदों से उन कषायों के जीतने का प्रयत्न कर।

मोही V/S निमोही

(चाल : छिप गया कोई रे....., छोटी-छोटी गैया.....)

आत्मज्ञान महान् है मोही नहीं जानते, तन-मन-इन्द्रियों को 'मैं' हूँ वे मानते।
सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि को 'मेरी' मानते, इस हेतु ही वे शिक्षा से धर्म भी करते।। (1)

आत्मश्रद्धा-प्रज्ञा सहित जो महान् (जीव) होते, तन-मन-अक्ष परे स्व (मैं) रूप मानते।
भौतिक सत्तादि परे स्व-सत्तादि मानते, इसकी प्राप्ति को वे स्व-लक्ष्य मानते।। (2)

तन-मन-इन्द्रिय व सत्ता-संपत्ति आदि, भौतिक होने से न होती आत्मा की संपत्ति।
तनादि बने हैं सभी भौतिक अणुओं से, आत्म का शुद्ध रूप चैतन्य अमूर्त है।। (3)

आकाश में यथा मेघ (होता) न मेघ आकाश, आकाश का वर्ण नीला (दिखता) न नीला आकाश।
तथाहि जीव न होता है भौतिक स्वरूप, किन्तु भौतिक अणु से बनते तन आदि रूप।। (4)

अतः जो तनादि को 'मैं' मानता वह मिथ्या, सत्ता-संपत्ति आदि को मेरी मानना मिथ्या।
तथापि ही मोही न जाने परम सत्य, आत्मश्रद्धा प्रज्ञावान् जानते (ये) परम सत्य।। (5)

स्व की उपलब्धि हेतु चक्रवर्ती भी बनते श्रमण, आत्म साधना से बनते शुद्ध-बुद्ध भगवन्।
मोही न बनते शुद्ध-बुद्ध भगवान्, आत्मोपलब्धि हेतु 'कनक' बना श्रमण ।। (6)

सीपुर, दिनांक 18.12.2016, रात्रि 8.36

संदर्भ-

ममकार का लक्षण

शश्वदनात्मीयेषु स्वतनु-प्रमुखेषु कर्मजनितेषु।
आत्मीयाऽभिनिवेशो ममकारो मम यथा देहः।। (14)

सदा अनात्मीय-आत्मरूप से बहिर्भूत-ऐसे कर्मजनित स्व-शरीरादिक में जो आत्मीय अभिनिवेश है-उन्हें अपने आत्मजन्य समझने रूप जो अज्ञान भाव है-उसका नाम ममकार है; जैसे मेरा शरीर।

व्याख्या-जो कभी आत्मीय नहीं, आत्म द्रव्य से जिनकी उत्पत्ति नहीं और न आत्मा के साथ जिनका अविनाभाव-जैसा कोई गाढ़ संबंध है; प्रत्युत इसके जो कर्म निमित्त हैं, आत्मा से भिन्न स्वभाव रखने वाले पुद्गल परमाणुओं द्वारा रचे गये हैं; ऐसे पर-पदार्थों को जो अपना मान लेना है उसका नाम ममकार है; जैसे मेरा यह शरीर, यह मेरा घर है, यह मेरा पुत्र, यह मेरी स्त्री और यह मेरा धन इत्यादि। क्योंकि ये सब वस्तुएँ वस्तुतः आत्मीय नहीं हैं, आत्माधीन नहीं हैं, अपने-अपने कारण-कलाप के अधीन हैं, अपने आत्म द्रव्य से भिन्न हैं और स्पष्ट भिन्न होती हुई दिखाई पड़ती हैं। शरीर आदि के भिन्न होते समय आत्मा का उन पर कोई वश नहीं चलता; जबकि वस्तुतः आत्मीय होने पर उन्हें आत्माधीन होना और सदा आत्मा के साथ रहना चाहिए था।

अहंकार का लक्षण

ये कर्मकृता भावाः परमार्थनयेन चात्मनो भिन्नाः।
तत्राऽऽत्माभिनिवेशोऽहंकारोऽहं यथा नृपतिः।। (15)

'कर्मों के द्वारा निर्मित जो पर्यायें हैं और निश्चयनय से आत्मा से भिन्न हैं उनमें भी आत्मा का जो मिथ्या आरोप है-उन्हें आत्मा समझने रूप अज्ञान भाव है-उसका नाम अहंकार है; जैसे मैं राजा हूँ।'

व्याख्या-यहाँ परमार्थनय का अर्थ निश्चयनय से है, जिसे द्रव्यार्थिकनय भी कहा गया है, उसकी दृष्टि से जितनी भी कर्मकृत पर्यायें हैं वे सब आत्मा से भिन्न हैं-आत्मरूप नहीं हैं-उन्हें आत्मरूप समझ लेना ही अहंकार है; जैसे मैं राजा, मैं रंक, मैं गोरा, मैं काला, मैं पुरुष, मैं स्त्री, मैं उच्च, मैं नीच, मैं सुरूप, मैं कुरूप, मैं पंडित, मैं मूर्ख, मैं रोगी, मैं निरोगी, मैं सुखी, मैं दुःखी, मैं मनुष्य, मैं पशु, मैं निर्बल, मैं सबल, मैं बालक, मैं युवा, मैं वृद्ध इत्यादि। ये सब निश्चयनय से आत्मा के रूप नहीं, इन्हें दृष्टि विकार के वश आत्मरूप मान लेना अहंकार है। यह कर्मकृत पर्याय को आत्मा मान लेने रूप अहंकार की एक व्यापक परिभाषा है। इसमें किसी पर्याय विशेष को लेकर गर्व अथवा मदरूप जो अहंभाव है वह सब शामिल है। निश्चय-सापेक्ष्य व्यवहारनय की दृष्टि से अपने को राजादिक कहा जा सकता है; परंतु व्यवहार निरपेक्ष निश्चयनय की दृष्टि से आत्मा को राजादिक मानना अहंकार है। इसी तरह देह को आत्मा मान लेना भी अहंकार है।

ममकार और अहंकार में मोह-व्यूह का सृष्टि क्रम

मिथ्याज्ञानान्वितान्मोहान्ममाहङ्कारसम्भवः
इमकाभ्यां तु जीवस्य रागो द्वेषस्तु जायते।। (16)

'मिथ्याज्ञान युक्त मोह से जीव के ममकार और अहंकार का जन्म होता है और इन दोनों से (ममकार-अहंकार से) राग तथा द्वेष उत्पन्न होता है।'

ताभ्यां पुनः कषायाः स्युर्नोकषायाश्च तन्मयाः।
तेभ्यो योगा प्रवर्तन्ते ततः प्राणिवधादयः।। (17)

'फिर उन (राग-द्वेष) दोनों से कषायें-क्रोध, मान, माया, लोभ और नो कषायें-हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा तथा कामवासनाएँ-उत्पन्न होती हैं, जो कि राग-द्वेष रूप हैं। उन कषायों तथा नो कषायों से योग प्रवृत्त होते हैं-मन, वचन तथा काय की क्रियाएँ बनती हैं-और उन योगों के प्रवर्तन से प्राणी वधादि रूप हिंसादिक कार्य होते हैं।'

तेभ्यः कर्माणि बध्यन्ते ततः सुगति-दुर्गती।
तत्र कायाः प्रजायन्ते सहजानीन्द्रियाणि च।। (18)

उन प्राणी वधादिक कार्यों से कर्म बंधते हैं-जिनके शुभ तथा अशुभ ऐसे दो

भेद हैं। कर्मों के बंधन से सुगति तथा दुर्गति की प्राप्ति होती है-अच्छे शुभ कर्मों के बंधन से (देव तथा मनुष्य भव की प्राप्ति रूप) सुगति और बुरे-अशुभ कर्मों के बंधन से (नरक तथा तिर्यंच योनि रूप) दुर्गति मिलती है। कर्मों के वश उस सुगति या दुर्गति में जहाँ भी जीव को जाना होता है वहाँ शरीर उत्पन्न होते हैं और शरीरों के साथ सहज ही इंद्रियाँ भी उत्पन्न होती हैं-चाहे उनकी संख्या शरीर में कम से कम एक ही क्यों न हो।

देहान्तरगतेर्बीजं देहेऽस्मिन्नात्मभावना।
बीजं विदेहनिष्पत्तेरात्मन्येवात्मभावना।। (74)

भावार्थ-जो जीव कर्मोदयजन्य इस जड़ शरीर को ही आत्मा समझता है और इसी से देह-भोगों में आसक्त रहता है, वह चिरकाल तक नये-नये शरीर धारण करता हुआ संसार परिभ्रमण करता है और इस तरह अनंत कष्टों को भोगता है। प्रत्युत इसके, आत्मा के निज स्वरूप में ही जिसकी आत्मत्व की भावना है वह जीव शीघ्र ही कर्मबंधन से छूटकर मुक्ति को प्राप्त हो जाता है और सदा के लिए अपने निराबाध सुख स्वरूप में मग्न रहता है।

नयत्यात्मानमात्मैव जन्म निर्वाणमेव च।
गुरुरात्मात्मनस्तस्मान्नान्योऽस्ति परमार्थतः।। (75)

भावार्थ-हितोपदेशक सद्गुरुओं का हितकर उपदेश सुनकर भी जब तक यह जीव अपने आत्मा को नहीं पहचानता और अंतरंग रागादिक शत्रुओं एवं कषाय-परिणति पर विजय प्राप्त कर स्वयं अपने उद्धार का यत्न नहीं करता तब तक बराबर संसाररूपी कीचड़ में ही फँसा रहता है और जन्म-मरणादि के असह्य कष्टों को भोगता रहता है। परन्तु जब इस जीव की भवस्थिति सन्निकट आती है, दर्शनमोह का उपशम-क्षयोपशम होता है, उस समय सद्गुरुओं के उपदेश के बिना भी यह जीव अपने आत्म स्वरूप को पहचान लेता है और राग-द्वेषादि रूप कषाय भाव एवं विभाव परिणति को त्याग करके स्वयं कर्मबंधन से छूट जाता है। इसलिये परमार्थिक दृष्टि से तो खुद आत्मा ही अपना गुरु है-दूसरा नहीं।

दृढात्मबुद्धिर्देहादावुत्पश्यन्नाशमात्मनः।
मित्रादिभिर्वियोगं च बिभेति मरणाद्भृशम्।। (76)

भावार्थ-फटे-पुराने कपड़े को उतारकर नवीन वस्त्र पहनने में जिस प्रकार

कोई दुःख नहीं होता, उसी प्रकार एक शरीर को छोड़कर दूसरा नया शरीर धारण करने में कोई कष्ट न होना चाहिए। परन्तु यह अज्ञानी जीव मोह के तीव्र उदयवश जब शरीर को ही आत्मा समझ लेता है और शरीर संबंधी स्त्री-पुत्र-मित्रादि पर-पदार्थों को आत्मीय मान लेता है तब मरण के समुपस्थित होने पर उसे अपना (अपने आत्मा का) नाश और आत्मीय जनों का वियोग दीख पड़ता है और इसलिए वह मरने से बहुत ही डरता है।

आत्मन्येवात्मधीरन्यां शरीरगतिमात्मनः।
मन्यते निर्भयं त्यक्त्वा वस्त्रं वस्त्रांतरग्रह्य।। (77)

भावार्थ-अंतरात्मा स्व-पर के भेद का यथार्थ ज्ञाता होता है, अतएव पुद्गल के विविध परिणामों से खेद खिन्न नहीं होता। शरीरादि पुद्गलमय द्रव्यों को वह अपने नहीं समझता। इसीलिये शरीर रूपी झोपड़ी का विनाश समुपस्थित होने पर भी उसे आकुलता नहीं सताती। वह तो निर्भय हुआ अपने आत्म स्वरूप में मग्न रहता है और शरीर के त्याग ग्रहण को वस्त्र के त्याग ग्रहण के समान समझता है।

व्यवहारे सुषुप्तो यः स जागर्त्यात्मगोचरे।
जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन् सुषुप्ताश्चात्मगोचरे।। (78)

इस प्रकार वही आत्मबोध को प्राप्त होता है जो व्यवहार में अनादरवान् है-अनासक्त है-और जो व्यवहार में आदरवान् है-आसक्त है-वह आत्मबोध को प्राप्त नहीं होता।

भावार्थ-जिस प्रकार एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकती उसी प्रकार आत्मा में एक साथ दो विरुद्ध परिणतियाँ भी नहीं रह सकतीं, आत्मासक्ति और लोकव्यवहारासक्ति ये दो विरुद्ध परिणतियाँ हैं। जो आत्मानुभवन में आसक्त हुआ आत्मा के आराधन में तत्पर होता है वह लौकिक व्यवहारों से प्रायः उदासीन रहता है-उनमें अपने आत्मा को नहीं फँसाता और जो लोकव्यवहारों में अपने आत्मा को फँसाये रखता है-उन्हीं में सदा दत्तावधान रहता है-वह आत्मा के विषय में बिल्कुल बेखबर रहता है-उसे अपने शुद्ध स्वरूप का कोई अनुभव नहीं हो पाता।

आत्मानमन्तरे दृष्ट्वा देहादिकं बहिः।
तयोरन्तरविज्ञानादाभ्यासादच्युतो भवेत्।। (79)

भावार्थ-जब इस जीव को आत्म स्वरूप दर्शन हो जाता है और यह

शरीरादि को अपने आत्मा से भिन्न पर-पदार्थ समझने लगता है तब इसकी परिणति पलट जाती है-बाह्य विषयों से हटकर अंतर्मुखी हो जाती है और तब यह अपने उपयोग को इधर-उधर इन्द्रिय विषयों में न भ्रमाकर आत्माराधन की ओर एकाग्र करता है, आत्मसाधन के अपने अभ्यास को बढ़ाता है और उस अभ्यास में दृढ़ता संपादन करके अपने सम्यग्दर्शनादि गुणों का पूर्ण विकास कर लेता है। फिर उसका आत्म स्वरूप से पतन नहीं होता-वह उसमें बराबर स्थिर रहता है। इसी का नाम अच्युत (मोक्ष) पद की प्राप्ति है।

पूर्वं दृष्टात्मतत्त्वस्य विभात्युन्मत्तवज्जगत्।
स्वभ्यस्तात्मधियः पश्चात् काष्ठपाषाणरूपवत्।। (80)

शरीर और आत्मा जिसे भेद विज्ञान हो गया है ऐसे अंतरात्मा को यह जगत् योगाभ्यास की प्रारंभावस्था में कैसा दिखाई देता है और योगाभ्यास की निष्पन्नावस्था में कैसा प्रतीत होता है उसे बतलाते हैं-

अन्वयार्थ-(दृष्टात्मतत्त्वस्य) जिसे आत्मदर्शन हो गया है ऐसे योगी जीव को (पूर्वं) योगाभ्यास की प्राथमिक अवस्था में (जगत्) यह अब प्राणि समूह (उन्मत्तवत्) उन्मत्त-सरीखा (विभाति) मालूम होता है किन्तु (पश्चात्) बाद को जब योग की निष्पन्नावस्था हो जाती है तब (स्वभ्यस्तात्मधियः) आत्म स्वरूप के अभ्यास में परिपक्व बुद्धि हुए अंतरात्मा को (काष्ठपाषाणरूपवत्) यह जगत् काठ और पत्थर के समान चेष्टा रहित मालूम होने लगता है।

गलती से नहीं सीखते अपितु गलती पर गलती करते 'इण्डियन'

(चाल : छिप गया कोई रे....., छोटी-छोटी गैया.....)

गलती से न सीखते हैं, इण्डियन लोग, गलती पर गलती करते, अधिकांश लोग।
निर्भया काण्ड आदि से, यह होता सिद्ध, भ्रष्टाचार-गंदगी व मिलावट आदि प्रसिद्ध।। (1)
गलती से हर महापुरुष तो, शिक्षा ही लेते, तीर्थंकर बुद्ध ऋषि, विज्ञानी (वैज्ञानिक) आदि सीखते।
अज्ञानी मोही स्वार्थी, जो दुराग्रही होते, भूल से न सीखते, भूल पर भूल करते।। (2)
यथा रावण कंस हिटलर तानाशाह आदि, गलती न त्यागने से भोगे हैं दुर्गति।

अंजन चोर-अंगुलीमाल-रत्नाकर-दृढ़प्रहारी, गलती त्यागने से बने हैं गुणधारी।। (3)
द्वितीय विश्व युद्ध के अनंतर यूरोपवासी, तथाहि युद्ध से विरक्त हुए जापानवासी।
कलिंग युद्ध अनंतर बने अशोक महान्, गलती से जो सीखते वे बनते महान्।। (4)
स्वतंत्र भारत के शिक्षित लोग भी, उच्च पद आसीन शासक वर्ग भी।
रूढ़िवादी संकीर्ण धार्मिक, शहरी भी, गलती से न सीखते, विद्यार्थी तक भी।। (5)
निर्भया काण्ड इसका है ज्वलंत दृष्टांत, गैंगरेप के कारण हुआ आंदोलन तक।
कानून में भी हुआ कठोर दण्ड तक, किन्तु बलात्कार बढ़ रहा है अत्याधिक।। (6)
तथाहि भ्रष्टाचार व मिलावट ठगी, प्रदूषण भी बढ़ रहे हैं तथाहि गंदगी।
शिक्षा में गिरावट व फैशन-व्यसन, आलस्य-प्रमाद व अनैतिक आचरण।। (7)
अस्त-व्यस्त-संत्रस्त व तनाव-दबाव, डिप्रेशन फोबिया व वाद-विवाद।
कलह-झगड़ा-द्वंद्व-फूट व लूट, आधि-व्याधि तलाक व आत्महत्या तक।। (8)
विद्यार्थी जीवन से ही (मैं) अनुभव करता हूँ, निर्भया काण्ड समय में भविष्य कहा हूँ।
इस हेतु साक्षी ससंघ साधु वैज्ञानिक आदि, जैसा कहा था वैसा ही हो रहा है अभी।। (9)
भूल सुधार हेतु ही है धर्म व शिक्षा, संविधान कानून व नीति-नियम व्यवस्था।
(किन्तु जो) भूल जो न सुधारते उनके धर्मादि व्यर्थ, शिक्षा कानून संविधान
नीति-नियम व्यर्थ।। (10)
पतित से पावन बनना है धर्म, स्व-पर हित करना है पावन धर्म।
शुद्ध-बुद्ध-आनंद है जीवों का स्वभाव, 'कनकनन्दी' का लक्ष्य शुद्धात्मा भाव।। (11)

सीपुर, दिनांक 18.12.2016, मध्याह्न 12.00

संदर्भ-

सक्सेस-हर पल, हर विचार महत्वपूर्ण

ऐसा होता है इनोवेटर्स के काम का तरीका

इनोवेटर्स में कुछ खास खूबियाँ होती हैं। यह सिर्फ एक पल की बात नहीं होती जब एक शानदार आइडिया दिमाग में आता है और वे इनोवेटर बन जाते हैं। इनोवेटर लगातार काम में, विचारों में, उधेड़बुन में लगे रहते हैं। तब किसी फैसले पर पहुँचते हैं और आइडिया आता है। जानते हैं वे कौनसी बातें हैं जो इनोवेटर्स को

खास बनाती हैं।

1. इनोवेटर्स की एक खूबी होती है कि लक्ष्य देखकर वे खुद-ब-खुद उसे हासिल करने के लिए मोटिवेट हो जाते हैं। अगर सफलता का उन्हें रिवार्ड मिलता है तो यह उन्हें और काम करने के लिए प्रेरित करता है। लेकिन इनकी सबसे बड़ी खासियत होती है नये विचार के साथ सामने आना। दूसरे लोग इनके काम से प्रभावित होते हैं। इसलिए ये प्रोजेक्ट्स को आगे ले जाते हैं और लोग इनके साथ जुड़ते जाते हैं। वे काम में आगे बढ़ने के लिए हर हद तक जाते हैं, इसलिए कुछ लोग इन्हें एरोगेंट भी कह सकते हैं।

2. वे हर नई चीज को तर्कसंगत तरीके से स्वीकार करने के लिए तैयार रहते हैं। क्योंकि जब नये आइडिया पर काम करना होता है तो कई काम पहली बार होते हैं। कई नई चीजें बनानी होती हैं। उनके लिए एक लाईन सटीक होती है-जहाँ चाह वहाँ राह। इसलिए जब वे कुछ करना ठान लेते हैं तो उसे पूरा करने के लिए हर तरह का जोखिम उठाते हैं। अपना पूरा समर्पण, समय और ऊर्जा एक ही काम में लगाते हैं।

3. ये जोखिम तो लेते ही हैं, लेकिन स्थिति को कभी अपने हाथ से निकलने नहीं देते। वे टीम से उम्मीद करते हैं कि काम की हर प्रगति की जानकारी उन्हें नियमित रूप से दी जाये। वे चाहते हैं कि हर चीज अपनी जगह पर हो और तय समय पर पूरी कर ली जाये। वे बिजनेस के हर पक्ष का पूरा ध्यान रखते हैं। चाहे वो सेल्स हो, प्रोडक्शन हो या फाइनेंस। पूरा बिजनेस उनके व्यक्तित्व के इर्द-गिर्द ही चलता है।

4. इनोवेटर्स की एक खूबी होती है कि वे हमेशा खुद जमीन पर बने रहते हैं और अपने साथ काम करने वालों को भी हकीकत से वाकिफ कराते रहते हैं। वे हर काम को एक कदम आगे ले जाना चाहते हैं। काम खत्म होने के बाद उसकी समीक्षा करते हैं और देखते हैं कहाँ कमी रह गई। अगली बार वे इसे दूर करने पर फोकस करते हैं।

टीचिंग-पहले तय हो क्या करना है

काम और जीवन में ऐसे बनता है संतुलन

काम और निजी जिंदगी के बीच सभी संतुलन कायम करना चाहते हैं।

लेकिन कई बार ऐसा हो नहीं पाता। शायद इसका कारण यह होता है कि हम यह नहीं जानते कि संतुलन कायम करना कितना जरूरी है। इसका एक तरीका है-यह तय करना कि आप क्या काम करना चाहते हैं और किस काम के लिए आप बेवजह हाँ कर बैठे हैं। सभी को हमेशा हर काम के लिए हाँ कहना जरूरी नहीं होता। हाँ कहने से पहले सोचना चाहिए कि इस काम को पूरा करने के लिए कहीं परिवार के समय में कटौती तो नहीं करना होगी। दूसरा तरीका यह है कि आने वाले सप्ताह या महीने में कौनसे काम है जो आपको करने हैं, उन्हें लिख लेना चाहिए। कोई भी काम करने से पहले यह जानना-सोचना जरूरी है कि आप इसे कर क्यों रहे हैं। क्या इसे करने से कोई फायदा होगा। इसकी उपयोगिता क्या है? संतुलन के बारे में कहा जाता है कि जीवन में सबसे अहम यही है। विनम्र होना जरूरी है, लेकिन इतना भी नहीं कि लोगों की प्रताड़ना सहने लगे। भरोसा करना जरूरी होता है, लेकिन इतना भी नहीं कि धोखा हो जाये। इन सभी परिस्थितियों के बावजूद जीवन में आगे बढ़ना ही सबसे महत्वपूर्ण बात है। काम और निजी जीवन में संतुलन तभी बनेगा जब अपने पैशन को समय दे पायेंगे। अगर आपका काम ही आपका पैशन होगा तो यह महसूस नहीं होगा कि आपको अपने निजी पलों से कुछ समय देना पड़ रहा है।

हैबिट-खाने, सोने की आदतों से प्रभावित होता है काम

काम के बीच में जल्दी एनर्जी खत्म हो रही है, तो ये उपाय हो सकते हैं उपयोगी

हम अपने दिन की शुरुआत बहुत अच्छे ढंग से करते हैं लेकिन दोपहर आते-आते हमारी एनर्जी खत्म हो जाती है। इसके कुछ कारण होते हैं तो कुछ ऐसे तरीके भी है, जिनके जरिये खुद को दिनभर के लिए रिचार्ज रखा जा सकता है। जैसे विशेषज्ञों के मुताबिक कैंडी बार खाने से आलस आता है। शरीर का एनर्जी लेवल कम हो जाता है, क्योंकि इसमें शुगर की मात्रा काफी ज्यादा होती है। इसकी जगह पर मिश्रित कार्बोहाइड्रेट जैसे अनाज, सब्जियाँ, फल और प्रोटीन खा सकते हैं। दरअसल कई घंटे लगातार एक ही काम करते रहने से भी दिमाग थक जाता है और नींद आने लगती है। इसलिए काम के बीच में छोटा ब्रेक लेना जरूरी होता है। बीच-बीच में किसी चर्चा में या किसी और काम में शामिल होना भी फायदेमंद रहता है। क्योंकि

अलग-अलग काम करते रहने से दिमाग थकता नहीं और एलर्टनेस बनी रहती है। काम के बीच एनर्जी खत्म होने का एक कारण पूरी नींद न लेना भी हो सकता है। रात में हल्का भोजन करने से अच्छी नींद आती है। अगर हैवी भोजन की इच्छा हो तो सोने से करीब दो घंटे पहले खाना खा लेना चाहिए। डीहाइड्रेशन की वजह से भी जल्दी थकान महसूस होने लगती है। इसलिए तय समय पर लगातार पानी पीते रहना चाहिए। प्यास लगने पर तुरंत पानी पीना चाहिए। कॉफी, चाय और जूस भी ऊर्जा युक्त तरल पदार्थ है। सादा पानी पीने की इच्छा न हो तो शिकंजी भी पी सकते हैं।

लर्निंग-हमेशा पॉजिटिव बने रहने के कुछ उपाय ये भी

निगेटिविटी दूर करने के लिए सबसे जरूरी आसपास का माहौल बदलना

विलियम नील्सन ने कहा है जब नकारात्मक विचारों के स्थान पर पॉजिटिव विचार आ जाते हैं तो परिणाम भी पॉजिटिव आने लगते हैं। लेकिन हमेशा पॉजिटिव बने रहना भी एक चुनौती होती है। हर बार चीज वैसी नहीं होती, जैसा हम सोचते हैं। निराशा, दुःख, चिंता, ईर्ष्या जैसी नकारात्मक भावनाएँ परेशान कर देती हैं। बार-बार नकारात्मक सोचने से तनाव बढ़ता जाता है। हालाँकि कुछ ऐसे तरीके हैं, जिससे आसानी से ऐसी स्थिति पर काबू पाया जा सकता है। सबसे अच्छा तरीका है मेडिटेशन। मेडिटेशन में दिमाग विचार शून्य होकर शांत हो जाता है। केवल 10 मिनट के ध्यान से ही तनाव दूर हो सकता है। लगातार काम से भी तनाव होता है। काम की लिस्ट बनाकर एक-एक करके काम पूरा करने से तनाव का एहसास नहीं होता एंड्रू बर्नस्टेम ने कहा है कि नकारात्मक विचार हमारे आसपास इसलिए नहीं बने रहते कि हम ऐसा चाहते हैं, बल्कि ऐसा इसलिए होता है कि कई बार हमारा परिवेश इससे निकलने नहीं देता। वर्क प्लेस पर चिड़चिड़ाहट महसूस होती है तो इसका कारण साथ काम करने वालों की नकारात्मक सोच भी हो सकती है। ऐसे में उन लोगों के साथ ज्यादा वक्त बिताना बेहतर होता है जो आपके परिवार और दोस्त हैं। ये लोग निगेटिविटी को आप पर हावी नहीं होने देते। असल में हम वैसा ही व्यवहार करते हैं, जैसा अनुभव करते है, महसूस करते हैं। जब निगेटिव विचारों को हटा देते हैं तो इसके साथ-साथ कई परेशानियाँ भी अपने आप दूर हो जाती हैं।

वारेन बफे-अच्छी छवि बनाने में 20 साल लग जाते हैं, लेकिन इसे बर्बाद होने में महज 5 मिनट लगते हैं। बिजनेस की दुनिया में छवि की बड़ी भूमिका होती है। इसीलिए जो लोग इसके प्रति सचेत होते हैं, वे चीजों को अलग तरीके से करते हैं और लंबे समय में इसके नतीजे भी उन्हें अच्छे मिलते है।

यत्यत् आचरितं पूर्वं तत्तत् अज्ञानं चेष्टितम्।
उत्तरोत्तर विज्ञानात् योगिनः प्रतिभाषते।।

उत्तरोत्तर विज्ञान होने पर योगियों को पूर्व-पूर्व में आचरित आचरण अज्ञानपूर्वक हुआ था ऐसा परिज्ञान होता है। अर्थात् अज्ञान अवस्था में जो गलत आचरण अज्ञानी करता है उस आचरण को अज्ञानी अपनी अज्ञानता के कारण सही मानता है। अंधा प्रकाश का ज्ञान नहीं कर सकता है। वह अंधकार तथा प्रकाश में भेदज्ञान नहीं कर सकता है। अंधकार तथा प्रकाश के ज्ञान के बिना वह अंधकार तथा प्रकाश के पृथक्-पृथक् गुणधर्म तथा उपयोगिता को नहीं जान सकता है और उसका सही उपयोग नहीं कर सकता है। इसी प्रकार मोही, अज्ञानी जो कुछ सोचता है करता है वह सब मोह, अज्ञान से युक्त होने से सत्य एवं पवित्रता से रहित होता है।

मोहेन संवृतं ज्ञानं स्वभावं लभते नहि।
मत्तः पुमान् पदार्थानां यथा मदनकोद्रवैः।। (7) इष्टोपदेश

जब ज्ञान मोहनीय कर्म के विपाक से अभिभूत हो जाता है तब वह ज्ञान वस्तु स्वरूप को यथार्थ प्रकाशन करने में असमर्थ हो जाता है। शुद्ध स्वरूप से ज्ञान कथञ्चित् आत्मा से अभिन्न है और वस्तु स्वरूप को यथार्थ से जानने के लिए पूर्ण समर्थ है परन्तु कर्म परवशता के कारण ज्ञान में/आत्मा में विकार उत्पन्न हो जाता है। कहा भी है-जिस प्रकार मल से आबद्ध मणि एक प्रकार का नहीं होता है, एक प्रकार का प्रकाश नहीं देता है उसी प्रकार कर्म से आबद्ध आत्मा भी एक प्रकार का नहीं होता है और एक प्रकार का नहीं जानता है। नशे को पैदा करने वाले कोद्रव-कोदों धान्य को खाकर जिसे नशा पैदा हो गया है ऐसा पुरुष घट-पट आदि पदार्थों के स्वभाव को नहीं जान सकता, उसी प्रकार कर्मबद्ध आत्मा पदार्थों के स्वभाव को नहीं जान सकता, अर्थात् आत्मा व उसका ज्ञानगुण यद्यपि अमूर्त है, फिर भी मूर्तिमान कोदादि धान्यों से मिलकर बिगड़ जाता है। उसी प्रकार अमूर्त आत्मा मूर्तिमान कर्मों के द्वारा अभिभूत हो जाता है और उसके गुण भी दब जाते हैं।

मिच्छत्तं वेदंतो जीवो विवरीय दंसणो होदि।

णय धम्मं रोचेदि हु महुरं खु रसं जहा जरिदो।। (17)

उदय में आये मिथ्यात्व का वेदन अर्थात् अनुभव करने वाला, जीव विपरीत दर्शन अर्थात् अतत्त्व श्रद्धा से युक्त होता है। वह न केवल अतत्त्व की ही श्रद्धा करता है, अपितु अनेकांतात्मक धर्म, वस्तु-स्वभाव, मोक्ष के कारणभूत रत्नत्रयात्मक धर्म को भी पसंद नहीं करता। पित्त ज्वर से ग्रसित व्यक्ति मीठे दूध-रसादि को पसंद नहीं करता; उसी तरह मिथ्यादृष्टि को धर्म नहीं रुचता है। अवस्तु में वस्तुभाव, अधर्म में धर्मभाव, कुगुरु में गुरुभाव, कुशास्त्र में शास्त्रभाव को धारण करता है। बहिरात्मा केवल शरीर पोषण करता है, अतीन्द्रिय आत्मोत्थ सुख से बहिर्मुख होकर विषय सुख में लीन रहता है। बाह्य-भौतिक हानि-वृद्धि में अपनी हानि-वृद्धि मानकर सुखी-दुःखी होता है।

कबीरदास ने भी कहा है-

माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि इवै पडन्त।

कहे कबीर गुरु ज्ञान थे, एक आध उबरन्त।।

अर्थात् जिस प्रकार कि दीपक से आकर्षित होकर पतंग उड़-उड़कर दीपक में पड़कर जलते जाते हैं तथापि शिक्षा लेकर सचेत सावधान होकर इस प्रवृत्ति से निवृत्त नहीं होते हैं, उसी प्रकार माया रूपी दीपक में मानव रूपी पतंग की दुर्दशा हो रही है। आध्यात्मिक सद्गुरु के ज्ञान से कोई बिरले ही निकट-भव्य महानुभाव शिक्षा लेकर इस मोह-माया-अज्ञान दीपक में पड़कर जलने के दुःख-मरण से निवृत्त हो पाते हैं। इसीलिए कबीरदास ऐसे गुरु के लिए कहते हैं-

सद्गुरु की महिमा अनन्त, अनन्त किया उपकार।

लोचन अनन्त उघाड़िया, अनन्त दिखावणहार।।

पं. दौलतराम ने कहा भी है-

सद्गुरु देय जगाय, मोह नींद जब उपशमै।

तब कुछ बने उपाय, कर्म चोर आवत रुकै।।

अर्थात् सतगुरु उन्हें जगा सकते हैं जिनके मोह नींद कुछ उपशमन हो जाती है। तीव्र मोहनिद्रा में आवेशित प्राणी को सतगुरु भी नहीं जगा सकते हैं। जैसा कि तीव्र उष्णता से युक्त काँच को शीतल करने के लिए उसमें शीतल पानी डाला जाये तो वह

काँच टुकड़ा-टुकड़ा हो जाता है वैसा ही तीव्र मोह-कषाय से युक्त जीवों को सतगुरु के अमृतपम उपदेश तथा उनकी संगति भी गुणकारी नहीं है किन्तु दुष्ट-दुर्जन संगति तथा कुभाव-कुप्रवृत्तियों में ही उसकी मित्रता होती है। यथा-

झूठो को झूठा मिलै, दूणाँ बंधै सनेह।
झूठे को साचा मिलै, तब ही तूटै नेह।। (कबीर)

अर्थात् झूठे को (काम-क्रोध-मोह-माया तथा इनसे युक्त जीव) झूठा मिलने से झूठ संबंधी स्नेह दोगुना हो जाता है तथा झूठे को साचा (सत्य, सच्चे गुरु, आत्मज्ञान, आत्मज्ञानी) मिलने से मोह संबंधी स्नेह टूटता है। यथा-

गुरुपदेशाभ्यासात्संवित्तेः स्वपरान्तरम्।
जानाति यः स जानाति मोक्षसौख्यं निरन्तरम्।। (33) इष्टो.

इस श्लोक में आचार्यश्री ने मोक्ष प्राप्ति में कारण सद्गुरु का उपदेश सुनकर उस उपदेश से शिष्य में उत्पन्न हुआ भेद-विज्ञान और भेद-विज्ञान से प्राप्त हुआ मोक्ष सुख का व्यवस्थित क्रमबद्ध वर्णन किया है। सम्यग्दर्शन प्राप्ति के लिए अनेक बहिरंग कारण में गुरु उपदेश भी एक कारण है और अंतरंग कारण भी एक भाव की निर्मलता है। सम्यग्दर्शन के बाद ज्ञान सम्यग्ज्ञान हो जाता है तथापि आध्यात्मिक अनुभवात्मक सूक्ष्म रहस्य का परिज्ञान भी गुरु से प्राप्त होता है। इसके आधार पर शिष्य आध्यात्मिक साधना की गहराई में पहुँचता है और आत्मा में स्थिर होकर शाश्वतिक मोक्ष सुख को प्राप्त करता है।

शिक्षा विज्ञान में मुख्य चार तत्त्व होते हैं। यथा-शिक्षा, शिक्षक, शिक्षार्थी, शिक्षाफल। जिसके द्वारा मनुष्य सुसंस्कृत, सुसभ्य, सुसंस्कारित बनता है, उसे शिक्षा कहते हैं। शिक्षा का फल है आत्मा में निहित अनंत शक्तियों का प्रकटीकरण। यथा- ज्ञान प्राप्ति, विनम्रता, समायोजना, सदाचार, स्वावलंबन, रत्नत्रय आदि। इस प्रकरण में हम गुरु अथवा शिक्षक के बारे में विचार-विमर्श करेंगे। प्राचीन काल में शिक्षकों को विशेषतः गुरु नाम से ही संबोधित किया जाता था। गुरु की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि-

गु अन्धकारस्तु 'रू' तस्य निरोधकम्।
अन्धकारः निरोधत्वात् गुरुः इत्यभिधियते।।

गुरु = गु = अंधकार, रू = प्रकाश। जो अज्ञानरूपी अंधकार को हटाकर

प्रकाश में ला दे वही तो गुरु है। वही तारण-तरण है। अपने आप भी तिरते हैं, दूसरों को भी तिराते हैं। गुरु गुणों से भारी यानि जिस में गुण भरे हो उसे गुरु कहते हैं। जो गुणों से खाली है वह गुरु नहीं है। जीव को सबसे पहिले स्व-हितकर एवं स्व-अहितकर के बारे में विश्वास, विज्ञान करके तदनुकूल आचरण करना विधेय है, आवश्यक है, अनिवार्य है तब ही स्व-विकास, स्व-उपकार, स्व-कल्याण संभव है। यथा-

यज्जीवस्योपकाराय तद्देहस्यापकारकम्।
यद्देहस्योपकाराय तज्जीवस्यापकारकं।। (19)

शरीर, धन, वस्त्रादि पौद्गलिक होने के कारण और आत्मा इससे भिन्न अमूर्तिक चैतन्य द्रव्य होने के कारण जो आत्मा के लिए उपकारी है, वह शरीर के लिए अपकारी है और जो आत्मा के लिए अपकारी है, वह शरीर के लिए उपकारी है; क्योंकि आत्मा का पोषण रत्नत्रय, क्षमादि दस धर्मों से होता है और शरीर का पोषण आहार वस्त्र, पानी आदि से होता है, इसका कारण यह है कि शरीर पौद्गलिक होने के कारण उसका पोषण पौद्गलिक आहारादि से होना स्वाभाविक है और आत्मा अमूर्तिक चैतन्य द्रव्य होने से रत्नत्रयादि आत्मिक गुणों से आत्मा का पोषण होना स्वाभाविक है और विरोधी द्रव्य से शोषण/अपकार होना भी स्वाभाविक है। संसारी जीव जो शरीर, मन, वचनादि से युक्त है वह पौद्गलिक होने के कारण उसका उपकार भी पुद्गल से ही होता है।

मोह-अज्ञान से आवेशित जीव शरीर, शरीर की आवश्यकता रूपी भोगोपभोग की वस्तु, शरीर से संबंधित कुटुम्ब आदि को ही स्व-स्वरूप मानकर, जानकर, श्रद्धाकर उस संबंधी ही सोच-विचार-व्यवहार करके स्वयं को श्रेष्ठ-ज्येष्ठ-कर्त्तव्यनिष्ठ-सफल मानकर पुनः राग-द्वेष-मोह-अहंकार-ममकार-ईर्ष्या-तृष्णा-काम-क्रोध में आक्रांत हो जाता है, वह कोल्हू के बैल के जैसे विवेक रूपी चक्षु में मोह अज्ञान रूपी पट्टी बाँधकर शरीर भौतिक रूपी संकीर्णता की परिधि में जीवन भर चक्कर काटता हुआ स्व-महान् स्वरूप-लक्ष्य-विकास-सफलता से अनजान होकर विपरीत आचरण करता हुआ दुःखी होता रहता है। इसलिए आध्यात्मिक गुरु दयाद्र होकर भव्य जीवों को प्रेरित करते हैं, मार्गदर्शन करते हैं। यथा-

परोपकृतिमुत्सृज्य स्वोपकारपरो भव।
अपकुर्वन्परस्याज्ञोदृश्यमानस्य लोकवत्।। (32) इष्टो.

इस श्लोक में आचार्यश्री ने लौकिक उदाहरण देकर यह समझाया कि जिस प्रकार लोक में बिना जाने शत्रु का भी उपकार कर लेते हैं परन्तु जब पता चल जाता है कि ये मेरा शत्रु है तब उसका उपकार छोड़कर आत्म-उपकार करते हैं, उसी प्रकार शरीर, धन-संपत्ति आदि जो परद्रव्य हैं, उसको मोही जीव अपना मानकर उसका संरक्षण संवर्द्धन करता है, परन्तु स्व-आत्म-द्रव्य को न जानता है, न मानता है, न उसका उपकार करता है। इसलिये दयालु परोपकारी आचार्य गुरुदेव भव्य को संबोधित करते हुए कहते हैं कि हे भव्य! तुम अनादिकाल से मोह से मोहित होकर स्व-उपकार को भूलकर दूसरों के उपकार में ही लगे हुए हो। तुम अभी तक धोबी का काम, गधे का काम, गुलामी का काम करते आ रहे हो। जिस प्रकार धोबी दूसरों के गंदे कपड़े धोता रहता है उसी प्रकार तुम भी दूसरों की गलती को देखकर उसको दूर करने में लगे हुए हो परन्तु स्वयं की गलती का भान तक तुम्हें नहीं है। जिस प्रकार गधा दूसरों का बोझ ढ़ोता है उसी प्रकार तुम भी शरीर का, कुटुम्ब का, धन का, अभिमान ढो रहे हो, जिस प्रकार गधा अपने पीठ पर चंदन की लकड़ी का भार केवल ढ़ोता रहता है परन्तु चंदन की सुगंधी तथा शीतलता का अनुभव नहीं करता है इसी प्रकार जीव, शरीर, संपत्ति, कुटुम्ब का भार ढ़ोता रहता है। परन्तु आत्मा का आनंद अनुभव नहीं करता है। वह उस भार को ही अपना सर्वस्व, गौरव, बड़प्पन मान लेता है। जो अन्याय, अत्याचार, शोषण आदि से धन कमाता है उस धन के कारण वह स्वयं को बड़ा मान लेता है और दूसरे लोग भी उसको बड़ा मान लेते हैं। गुलाम जिस प्रकार मालिक के आधीन होकर उसके निर्देश के अनुसार दीन-हीन होकर मालिक की सेवा करता है उसी प्रकार मोही जीव शरीर, कुटुम्ब, धन, संपत्ति तथा राग-द्वेष के गुलाम बनकर उसकी नौकरी करता है और यह सब करता हुआ भी स्वयं को श्रेष्ठ मान लेता है। जो ज्ञान वैराग्य से सम्पन्न होकर परिवार तथा वैभवादि त्यागकर स्व-आत्म-कल्याण करना चाहता है, उसे भी ऐसे मोही जीव दीन-हीन असहाय गरीब मान लेते है। इसलिए आचार्यश्री ने यहाँ कहा कि हे मोही! तुमने अनंत संसार में दूसरों के लिए इतना रोया इतना आँसू बहाया कि यदि उस आँसू को इकट्ठा किया जाये तो अनेक समुद्र की जल राशि से अधिक हो जायेगा अनंत बार

तुम दूसरों के गुलाम, भाई, पिता, पुत्र, स्त्री आदि बने और दूसरे भी तुम्हारे अनंत बार बने। इन सबके उपकार के लिए तुमने जितना परिश्रम किया उसका अनंतवाँ भाग भी स्वोपकार में लगाओगे तो तुम तीन लोक का स्वामी अर्थात् सिद्ध भगवान् बन जाओगे। इसलिए कुंदकुंदाचार्य देव ने कहा है-''आदहिदं कादव्वं'' अर्थात् आत्महित अच्छी तरह से समग्रता से करना चाहिए।

अप्पा नई वयेरणी अप्पा में कूडसामली।
अप्पा कामदुआ धेणु अप्पा में नन्दणं वणं।। (36)

मेरी अपनी आत्मा ही वैतरणी नदी है, कूट-शाल्मली वृक्ष है, कामदुहा धेनु है और नंदनवन है।

अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तं ममित्तं च दुप्पट्ठिय-सुपट्ठिओ।। (37)

आत्मा ही अपने सुख-दुःख का कर्त्ता है और विकर्त्ता विनाशक है। सत् प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही अपना मित्र है और दुष्प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही अपना शत्रु है।

संक्षिप्ततः कहे तो अनादिकालीन कुसंस्कार/कर्म के कारण तथा तात्कालीन आवश्यकता-इच्छा-तृष्णा आदि के निमित्त मानव उपरोक्त पाश्विक प्रवृत्तियों में लिप्त होता है। कथञ्चित् अधिकांश मानव पशुओं से भी अधिक कुभाव-कुप्रवृत्तियों में लिप्त होते हैं। अधिकांश पशु-पक्षी आदि अपनी प्राकृतिक इच्छा-आवश्यकता की पूर्ति की सीमा/मर्यादा में रहते हैं परन्तु अधिकांश मानव आवश्यकता से अधिक तृष्णा-अहंवृत्ति आदि की पूर्ति के लिए अपनी सीमा/मर्यादा का उल्लंघन करने के कारण क्रूर से क्रूर पशु से भी अधिक हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार, विध्वंस करके स्व-पर-पर्यावरण-विश्व को क्षति पहुँचाते हैं। इसलिए तो क्रूर माँसभक्षी, शिकारी प्राणी सिंह भी 5वें नरक में जाता है तो पापिनी स्त्री 6वें नरक में तो पापी पुरुष 7वें नरक में जाता है। इससे विपरीत जब मानव सत् चिन्तन-सत् पुरुषार्थ करता है तो मानव से महामानव एवं महामानव से भगवान् बन जाता है। पाश्विक प्रवृत्तियों से पतन एवं उसकी निवृत्ति से उत्थान/पावन के हजारों-लाखों उदाहरण ग्रंथों में लिपिबद्ध है और कुछ अंश में जीवन्त उदाहरण भी वर्तमान में है। रत्नाकर डाकू से महर्षि बाल्मिकी, अंगुलिमाल डाकू से बौद्ध भिक्षु, दृढ़ प्रहरी से साधु, अंजरचोर से निरंजन (सिद्ध भगवान्), विद्युत् चोर से साधु, चण्डाल

अशोक से देवानांप्रिय, प्रियदर्शी अशोक, साधुद्रोही श्रेणिक से भगवान् महावीर के भक्त तथा भावी तीर्थंकर आदि अनेक प्रसिद्ध उदाहरण हैं।

भगवान् महावीर के हीयमान एवं वर्धमान चारित्र भी अत्यंत लोमहर्षक एवं शिक्षाप्रद है जो कि संक्षिप्त में निम्नोक्त हैं-

(1) अत्यंत प्राचीनकाल में भगवान् महावीर का जीव पुररवा भील था। सागर सेन मुनि की शिक्षा से कौआ का माँस नहीं खाने का नियम लेने से मरकर, (2) सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ, (3) भगवान् ऋषभदेव के पुत्र भरत का पुत्र मारीचि हुआ, (4) ब्रह्म स्वर्ग में देव हुआ, (5) कपिल ब्राह्मण का पुत्र जटिल हुआ, (6) सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ, (7) भारद्वाज ब्राह्मण के पुष्यमित्र पत्र हुआ, (8) सौधर्म स्वर्ग का देव हुआ, (9) अग्निसह ब्राह्मण हुआ, (10) माहेन्द्र देव हुआ, (11) अग्निमित्र ब्राह्मण हुआ, (12) माहेन्द्र स्वर्ग में देव, (13) भारद्वाज ब्राह्मण, (14) अकौआ वृक्ष 60 हजार पर्याय, (15) सीप 80 हजार पर्याय, (16) नाबू 20 हजार पर्याय, (17) अशोक वृक्ष 11 हजार पर्याय, (18) केशरी वृक्ष 5 करोड़ पर्याय, (19) चंदन वृक्ष 3 लाख पर्याय, (20) मछली 3 क.प. (क=करोड़, प-पर्याय), (21) वैश्या 60 क.प., (22) हाथी 20 क.प., (23) गधा 60 क.प., (24) कुत्ता 30 क.प., (25) नपुंसक 60 क.प., (26) स्त्री 20 क.प., (27) धोबी 90 क.प., (28) घोड़ा 8 क.प., (29) स्वर्ग 80 क.प., (30) असुरदेव 30 क.प., (31) बिल्ली 60 क.प., (32) भोगभूमियाँ 60 क.प., (33) चाण्डाल 5 क.प., (34) ब्राह्मण 1 प., (35) देव 1 प., (36) राजपुत्र 1 प., (37) देव 1 प., (38) अर्धचक्रवर्ती 1 प., (39) सातवें नरक 1 प., (40) सिंह 1 प., (41) पाँचवें नरक 1 प., (42) सिंह 1 प. (इस पर्याय में चारण ऋद्धिधारी मुनि से उपदेश प्राप्त कर पाश्विक प्रवृत्तियों को त्यागकर आत्म रुचिपूर्वक सच्चा धर्म को स्वीकार करके माँस खाना, हिंसा करना आदि पापों को त्यागकर समाधि लेकर मरा), (43) देव 1 प., (44) राजपुत्र 1 प., (45) देव 1 प., (46) राजा हरिषेण 1 प., (47) देव 1 प., (48) राजपुत्र 1 प., (49) देव 1 प., (50) राजा हरिषेण 1 प., (51) देव 1 प., (52) चक्रवर्ती 1 प., (53) देव 1 प., (54) राजा नंद 1 प., (55) अच्युत स्वर्ग का देव 1 प., (56) तीर्थंकर भगवान् महावीर, (57) मोक्ष गमन-सिद्ध भगवान् और कुछ शास्त्रों में अन्य कुछ भवों के भी वर्णन हीनाधिक

रूप में पाये जाते हैं। उपरोक्त भव प्रायः 5 शंख 37 करोड़ 4 लाख 31 हजार 23 है। यह भव तो पुरुरवा भील से भगवान् महावीर अवस्था/पर्याय तक के हैं। वैसे अनादि काल से 5 परिवर्तन में अनंतान्त भव होते हैं। भगवान् महावीर की इस संक्षिप्त जीवनी से शिक्षा मिलती है कि वे जब भील की पर्याय में कौआ का माँस का त्याग किया तब इस त्याग वृत्ति के कारण मरकर के देव हुए। वहाँ से मारीचि हुए। इस पर्याय में साधु बनकर भगवान् आदिनाथ के समवशरण में दिव्य ध्वनि से सुना कि मारीचि अगले भव में तीर्थंकर होने वाला है। यह सुनकर उसे अहंकार हो गया, जिससे वह साधु पर्याय से च्युत हो गया। इसके कारण उन्हें उपरोक्त पर्यायों में जन्म लेना पड़ा, फिर सिंह की पर्याय में साधु के उपदेश से आत्म जागृति से पशुत्व वृत्ति कम हुई जिससे उनका उत्थान होता गया जिससे वे आगे जाकर तीर्थंकर महावीर बने। इसीलिए कहा है-

सुलझे पशु उपदेश सुन, तू क्यों न सुलझे पुमान।
नाहर से भये वीर प्रभु, गज से पारस महान्।।

निर्भया काण्ड के कल 4 साल : सुनवाई अब भी जारी ही है...

चार साल पहले लाखों लोग साथ खड़े थे, अब कोर्ट में 10 आदमी भी नहीं दिखते : निर्भया के माता-पिता

16 दिसम्बर को निर्भया दुष्कर्म के 4 साल पूरे होंगे। पर न्याय अभी बाकी है। मामला अभी सुप्रीम कोर्ट में है। निर्भया के माता-पिता रोज अदालत के चक्कर लगा रहे हैं। उन्हें गुस्सा है कि वादा करके सरकार बेटे को नौकरी देना भूल गई है। उनसे बात की पवन कुमार ने...

उस घटना ने देश हिला दिया था। चार साल बीतने को है... आप अब भी हर सुनवाई पर कोर्ट आते हैं... माँ आशा देवी-और क्या करते? हमारे लिए तो रोज की यातना है। पहले लोअर कोर्ट, फिर हाईकोर्ट और अब सुप्रीम कोर्ट। हर सुनवाई दर्द सा है। लेकिन दोषियों को सजा दिलाने तक लड़ेंगे। नहीं तो बेटी बोलेगी माँ-पापा हार गए।

तब तो लाखों लोग साथ थे। अब क्या स्थिति है? माँ-ऐसी घटनाओं

के बाद लोगों से लेकर नेता-मंत्री तक मदद का वादा करते हैं। पर 10 दिन बाद पीड़ित परिवार अकेला रह जाता है। अब निर्भया के लिए दस लोग खड़े दिखते हैं और गुनहगारों को बचाने के लिए सौ लोग।

किस बात का सबसे ज्यादा दुःख है? पिता बद्रीनाथ-दिल्ली सरकार ने बेटे की पढ़ाई और सरकारी नौकरी का वादा किया था। सरकार ने घर दिया, बेटे की पढ़ाई भी कराई। पर नौकरी का वादा भूल गई। मेरी बेटी के साथ सबसे ज्यादा दरिंदगी करने वाले नाबालिग के रिहा होने पर दिल्ली सरकार ने उसे सिलाई मशीन, 10 हजार रु. दिये। ये अच्छा नहीं किया।

और यूपी सरकार ने भी तो बहुत से वादे किये थे... पिता-गाँव में अस्पताल तो बना दिया है। पर उसमें डॉक्टर नहीं है। गाँव आने-जाने के लिए न तो साधन है और न ही सड़क। कॉलेज बनाने का प्रस्ताव भी फाइलों में ही दफन हो चुका है। ऐसे में बेटे को सरकारी नौकरी देने का वायदा भी कौन याद रखेगा।

निर्भया ज्योति ट्रस्ट का काम कैसा चल रहा है? पिता-पीड़ित बेटियों के लिए हमने यह ट्रस्ट बनाया था। अवैतनिक तौर पर 11 लोग इससे जुड़े हैं। किसी घटना का पता चलते पर हम पहुँचते हैं। मगर फंड न होने के कारण ट्रस्ट किसी की आर्थिक मदद नहीं कर पा रहा है।

आपकी आजीविका कैसे चल रही है? पिता-मैं एक कंपनी में नौकरी करता हूँ। उसी से घर का और कानूनी लड़ाई का खर्च चल रहा है। मुकदमे के चलते हफ्ते में कई बार छुट्टी लेनी पड़ती है। तब वेतन कट जाता है। दिक्कत तो होती है। पर ठीक है...।

उस घटना के बाद महिला हिंसा से जुड़े कानून काफी सख्त किये गये पर घटनाएँ नहीं रुकीं... माता/पिता-बिल्कुल सही... महिलाएँ अब भी कहाँ सुरक्षित हैं। बच्चों तक से दरिंदगी हो रही है। सरकार कानून और सख्त करें। तय करे कि ऐसी घटनाएँ न हों। ऐसा हुआ तो यही हमारी बेटी के लिए सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

अंतराष्ट्रीय भ्रष्टाचार निरोधी दिवस

रुपये 67 लाख करोड़ रिश्वत के तौर पर दिये जाते है पूरी दुनिया में हर साल, रुपये 3.23 लाख करोड़ का नुकसान होता है, 20 साल में औसतन भ्रष्टाचार की वजह से एशियाई देश को, 17% तक का घाटा हो सकता है। भ्रष्टाचार से किसी भी

देश को जीडीपी का, 68% देश मानते है कि दुनिया में भ्रष्टाचार बड़ी समस्या है।

भ्रष्टाचार में देशों की रैंकिंग–डेनमार्क-1, न्यूजीलैंड-2, सिंगापुर-7, अमरीका-17, इंग्लैण्ड-78, नेपाल-85, चीन-87, श्रीलंका-90, भारत-169, अफगानिस्तान-172.

छात्रों के विरोध प्रदर्शनों में 148% का इजाफा

148% का इजाफा विरोध प्रदर्शनों में बीते पाँच सालों में, 190% की वृद्धि प्रदर्शनकारी छात्रों की संख्या में हुई, हर एक घंटे में छात्रों का विरोध प्रदर्शन होता है देशभर में, 42% पढ़ाई पर असर पड़ता है प्रदर्शनों से।

पाँच सालों में कहाँ कितने प्रदर्शन–तमिलनाडु-1,09,548, पंजाब-40,513, महाराष्ट्र-30,536, कर्नाटक-25,237, आंध्रप्रदेश-15,536, राजस्थान-12,549, मध्यप्रदेश-34,174, उत्तरप्रदेश-27,886, दिल्ली-23,817, गुजरात-16,702.

किन वजहों से रोष–शैक्षणिक संस्थानों के फैसलों के कारण, सांप्रदायिक वजहों से रोष, सरकारी व्यवस्था के प्रति आक्रोश, राजनीतिक फैसलों पर विरोध, मजदूरों के हित में विरोध।

छात्र ज्यादा सक्रिय (रैंक)–रूस-1, क्यूबा-2, प्राग-3, जर्मनी-4, फ्रांस-5, अमरीका-42, भारत-61.

वैश्विक गुलामी सूचकांक 2016 के अनुसार 1 करोड़ 83 लाख भारतीय हैं फँसे

आधुनिक गुलामी में हमारा भारत सबसे ऊपर

भारत में बंधुआ मजदूरी, वेश्यावृत्ति और भीख जैसी आधुनिक गुलामी के शिकंजे में एक करोड़ 83 लाख 50 हजार लोग जकड़े हुए हैं और इस तरह दुनिया में आधुनिक गुलामी से पीड़ितों की सबसे ज्यादा संख्या भारत में है। दुनियाभर में ऐसे गुलामों की तादाद तकरीबन 4 करोड़ 60 लाख है।

आस्ट्रेलिया आधारित मानवाधिकार समूह 'वाक फ्री फाउंडेशन' की तरफ से आज जारी 2016 वैश्विक गुलामी सूचकांक के अनुसार, दुनियाभर में महिलाओं और बच्चों समेत 4 करोड़ 58 लाख लोग आधुनिक गुलामी के गिरफ्त में हैं। दो साल पहले 2014 में यह तादाद 3 करोड़ 58 लाख थी।

रिपोर्ट में बताया गया है कि भारत में आधुनिक गुलामी में जकड़े लोगों की तादाद सबसे ज्यादा है। यहाँ एक अरब 30 करोड़ की आबादी में से 1 करोड़ 83 लाख 50 हजार लोग गुलामी में जकड़े हैं। उत्तर कोरिया में इसकी व्यापकता सबसे ज्यादा है। वहाँ आबादी का 4.37 प्रतिशत आधुनिक गुलामी की गिरफ्त में है। वर्ष 2014 की पिछली रिपोर्ट में भारत में आधुनिक गुलामी में जकड़े लोगों की तादाद 1 करोड़ 43 लाख बताई गई थी। सूचकांक के अनुसार, आधुनिक गुलामी सभी 167 देशों में पाई गई है। इसमें शीर्ष पाँच देश एशिया के हैं। भारत इसमें शीर्ष पर है। भारत के बाद चीन (33 लाख 90 हजार), पाकिस्तान (21 लाख 30 हजार), बांग्लादेश (15 लाख 30 हजार) और उज्बेकिस्तान (12 लाख 30 हजार) का स्थान है।

सूचकांक के अनुसार, इन पाँच देशों में कुल मिलाकर 2 करोड़ 66 लाख लोग गुलामी में बंधे हैं, जो दुनिया के कुल आधुनिक गुलामों का 58 फीसद है। सूचकांक में आबादी के अनुपात में गुलामी की तादाद के आधार पर 167 देशों का क्रम तय किया गया है। आधुनिक गुलामी में शोषण के उन हालात को रखा गया है, जिससे धमकी हिंसा, जोर-जबरदस्ती, ताकत का दुरुपयोग या छल-कपट के चलते लोग नहीं निकल सकते हैं। शोध में 25 देशों में 53 भाषाओं में आयोजित 42 हजार से ज्यादा साक्षात्कार शामिल किये गये हैं। इनमें भारत में 15 राज्य स्तरीय सर्वेक्षण भी शामिल हैं। ये प्रतिनिधिमूलक सर्वेक्षण अपने दायरे में वैश्विक आबादी के 44 फीसदी को समेटते हैं। आबादी के अनुपात में जिन देशों में सबसे ज्यादा आधुनिक गुलामी का आकलन किया गया है उनमें उत्तर कोरिया, उज्बेकिस्तान, कंबोडिया, भारत और कतर है।

आबादी के अनुपात में जिन देशों में सबसे कम आधुनिक गुलामी का आकलन किया गया है उनमें लक्जेमबर्ग, नार्वे, डेनमार्क, स्विट्जरलैंड, आस्ट्रिया, स्वीडन और बेल्जियम, अमेरिका और कनाडा, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड शामिल हैं। इस अध्ययन में आधुनिक गुलामी के खिलाफ सरकार की कार्रवाइयों और पहल पर भी निगाह डाली गई। जिन 161 देशों का अध्ययन किया गया, उनमें से 124 देशों ने संयुक्त राष्ट्र मानव तस्करी प्रोटोकोल के अनुरूप मानव तस्करी को अपराध करार दिया है जबकि 90 देशों ने सरकारी कार्रवाइयों को समन्वित करने के लिए राष्ट्रीय कार्ययोजनाएं विकसित की हैं।

आसपास की खबरों से अनजान हम

मैक्सिको को पछाड़कर शीर्ष पर भारत

भारतीयों को कई मामलों में अपने आसपास की सटीक जानकारी नहीं हैं। अधिकतर को जीडीपी, संपत्ति से लेकर अल्पसंख्यक आबादी के बारे में नहीं मालूम। ऐसे में, भारत को इस साल का मोस्ट इग्नोरेंट देश का तमगा मिला है यानी ऐसा देश जहाँ के लोग अपने आसपास की मूल जानकारियों से अंजान हैं या जानने में दिलचस्पी नहीं रखते। इस मामले में भारत ने मैक्सिको को पछाड़ दिया है। बीते साल मैक्सिको पहले स्थान पर था। अब वो 40 देशों की रैंकिंग में 10वें स्थान पर आ गया है। दरअसल, 40 मुल्कों के 16 साल से 64 साल की आयु वाले लोगों से बुनियादी सवाल पूछे गये थे। इनमें दो प्रमुख सवाल थे। एक जीडीपी पर। दूसरा अल्पसंख्यकों की आबादी पर। मगर भारतीय सवाल के सही जवाब देने में पूरी तरह से फेल रहे। नतीजतन, उसे 2016 की इग्नोरेंस इंडेक्स में पहला स्थान मिला। भारतीयों से पूछा गया कि आपके देश में कितनी मुस्लिम आबादी है। जवाब मिला, 28 फीसदी। असल में आबादी 14.2 फीसदी है।

हेल्थकेयर का अनुमान लगाने में विफल–भारतीयों से पूछा गया कि आपके देश की जीडीपी में स्वास्थ्य के क्षेत्र में सरकार कितना फीसदी निवेश करती है। लोगों ने 23 फीसदी जवाब दिया जबकि सही आँकड़ा पाँच फीसदी से कम है।

अज्ञानता में रैंक–भारत-1, चीन-2, ताइवान-3, दक्षिणी अफ्रीका-4, ब्राजील-5, थाईलैंड-6, सिंगापुर-7, तुर्की-8, इंडोनेशिया-9, मैक्सिको-10.

कानून का शासन और सामाजिक न्याय में भारत 66वें पायदान पर

कानून का शासन लागू करने और सामाजिक न्याय व सुरक्षा देने में भारत दुनियाभर में 66वें स्थान पर हैं। वर्ल्ड जस्टिस प्रोजेक्ट रूल ऑफ लॉ इंडेक्स की रिपोर्ट में इसकी जानकारी मिली है।

एशिया से हम बेहतर–2 रैंक भारत की द. एशिया के छह देशों में, 6 रैंक भारत का विकासशील देशों के रैंकों की सूची में। 113 देशों का रैंक जारी हुआ, 1

रैंक पर डेनमार्क, 66वें स्थान पर भारत, 80वाँ स्थान चीन का, 18वाँ स्थान अमरीका का, 10वाँ स्थान ब्रिटेन का, 43वें स्थान पर द. अफ्रीका, 52वें स्थान पर ब्राजील, 92वीं रैंक रूस की।

इन मानकों के आधार पर जारी हुई रैंकिंग–भ्रष्टाचार का कम होना, देश में रहने का माहौल, काम के अवसर, कानून का शासन, सामाजिक न्याय, सुरक्षा, मानवाधिकार की सुरक्षा।

मानवाधिकार और भ्रष्टाचार में कौन कहाँ–भारत 81, 69, चीन 108, 52, रूस 97, 78, ब्राजील 52, 63, द. अफ्रीका 48, 45.

पति को पीटने में भारतीय पत्नियाँ तीसरे स्थान पर

देश में घरेलू हिंसा में पतियों के जुल्म की दास्ता तो खूब सुर्खियाँ बनती हैं। वहीं यूएन के अध्ययन में पतियों पर हुए, घरेलू हिंसा के चौंकाने वाला खुलासा हुआ है। अध्ययन में कहा गया है कि इजिप्ट में घरेलू हिंसा के तहत सबसे ज्यादा पति पीटे जाते हैं। श्रेणी में दूसरे नंबर पर यूके और भारत तीसरे नंबर पर है। अध्ययन सोशल मीडिया पर वायरल हो रहा है। अध्ययन से पता चला है कि पतियों को मारने के लिए पत्नियाँ बेलन, बेल्ट, जूते व कीचन के अन्य सामानों का इस्तेमाल करती हैं।

संरक्षित करने की जरूरत–टिवट्र पर एक यूजर ने लिखा कि इसके पीछे कड़वा सच है कि समाज पुरुषों के साथ होने वाले जुल्मों के प्रति उदासीन रहता है, आवाज नहीं उठाता। वहीं दूसरे ने लिखा देश में पुरुषों को इस तरह के जुल्म से बचाने के लिए संरक्षित करने की जरूरत है, क्योंकि महिलाओं के प्रति पहले से ही काफी सहानुभूति है।

नार्वे के गरीबों की आय भारतीय गरीबों से ज्यादा

भारत में गरीबों की एक दिन की न्यूनतम आय 30 रुपये हैं। नार्वे के गरीबों की आय भारत से 22 गुना अधिक हैं। वर्ल्ड बैंक के आँकड़ों ने इसकी पुष्टि की हैं।

रुपये 30 रोजाना की न्यूनतम आय है भारत में गरीबों की, रुपये 652 न्यूनतम कमाता है नॉर्वे का गरीब एक दिन में।

कहाँ कितनी आय–नॉर्वे 652 रुपये, स्विट्जरलैंड 575 रुपये, लग्जमबर्ग

559 रुपये, स्वीडन 485 रुपये, फिनलैंड 483 रुपये, जर्मनी 474 रुपये, फ्रांस 449 रुपये, ब्रिटेन 367 रुपये, स्पेन 268 रुपये, रूस 169 रुपये, ब्राजील 89 रुपये, भारत 30 रुपये।

सबसे खराब स्थिति–तनजानिया 21, टोगो 17, रवांडा 16, कोंगो 10, रिपब्लिकन ऑफ कांगो 20.

यूथ डवलपमेंट

हम भूटान से भी पीछे

133वें स्थान पर है भारत संयुक्त राष्ट्र के ग्लोबल यूथ डवलपमेंट इंडेक्स में।

यह है पैमाने–राष्ट्रमंडल सचिवालय ने रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, नागरिक और राजनीति क्षेत्र में युवाओं के लिए अवसर की संभावना के आधार पर तैयार किया है। 188 कुल देश सर्वे में शामिल, नेपाल हमसे आगे, 77 रैंक नेपाल, 69 रैंक भूटान, 31 रैंक श्रीलंका, 11 प्रतिशत का सुधार पाँच साल में भारत अंक में।

यूरोपीय देश सबसे ऊपर–1. जर्मनी 0.894, 2. डेनमार्क 0.865, 3. आस्ट्रेलिया 0.838, 4. स्विट्जरलैंड 0.837, 5. ब्रिटेन 0.837, 6. नीदरलैंड 0.836, 7. ऑस्ट्रिया 0.836, 133. भारत 0.548।

मामले बढ़े सजा नहीं

डेढ़ दशक में भ्रष्टाचार के 53,000 मामले दर्ज सीएचआरआई और एनसीआरबी की संयुक्त रिपोर्ट।

कहाँ कितने केस दर्ज–2446 हरियाणा, 3171 पंजाब, 948 जम्मू-कश्मीर, 1080 हिमाचल प्रदेश, 100 उत्तराखंड, 739 दिल्ली, 15 पश्चिम बंगाल, 968 उत्तरप्रदेश, 8887 महाराष्ट्र, 15 मेघालय, 1 दमन व दीव।

किस तरह का भ्रष्टाचार–70 प्रतिशत केस सरकारी विभागों से जुड़े हैं, 75 प्रतिशत मामलों में पुलिस वाले शामिल सरकारी कर्मचारियों के केस में, 30 प्रतिशत केस में निजी क्षेत्र के कर्मचारी शामिल, 12 प्रतिशत बीमा से जुड़े निजी क्षेत्र के कर्मचारी भ्रष्टाचार में लिप्त।

कार्यस्थल पर यौन प्रताड़ना

69% पीड़ित नहीं करती शिकायत

वजह-डर, झिझक, शिकायत प्रक्रिया में विश्वास की कमी, जानकारी का अभाव और यौन प्रताड़ना से जुड़े ताने है।

10 शहरों में स्थित बीपीओ, आईटी सेक्टर, हॉस्पिटल, कानूनी और शैक्षणिक संस्थानों में किया गया सर्वे। 6047 लोगों से की गई मुंबई, दिल्ली, बेंगलुरु, पुणे, गुवाहाटी, जालंधर, कोलकाता, अहमदाबाद, हैदराबाद और लखनऊ में बातचीत।

सर्वे के दौरान पूछे गए सवाल-78 प्रतिशत महिलाओं से, 22 प्रतिशत पुरुषों से। 38 प्रतिशत महिलाएँ हुई कार्यस्थल पर प्रताड़ना का शिकार, 40 प्रतिशत के साथ अन्य स्थानों पर किया यौन दुर्व्यवहार, 22 प्रतिशत के साथ स्कूल या कॉलेज में हुई बदसलूकी।

65 प्रतिशत कंपनियाँ कार्यस्थल पर महिलाओं के साथ यौन दुर्व्यवहार संबंधी 2013 के अधिनियम की शर्तों को पूरा नहीं करतीं, 93.5 प्रतिशत लोगों ने माना कि स्कूलों, कॉलेजों, सोसाइटीज और दफ्तरों में प्रताड़ना होती हैं।

नोटबंदी का असर...

20 लाख करोड़ का मानव तस्करी का बाजार खत्म!

नोटबंदी के कारण 20 लाख करोड़ रुपये की मानव तस्करी इंडस्ट्री की कमर टूट गई है। महिलाओं और लड़कियों की तस्करी सेक्स के लिए की जाती है।

मानव तस्करी का चक्र सामान्य तौर पर नवंबर तक पूरा हो जाता है और फिर देश के विभिन्न हिस्सों में भेजा जाता है, जहाँ उन्हें प्लेसमेंट एजेंसियों, वैश्यालयों आदि के हाथों बेच दिया जाता है। विभिन्न सर्वे और तस्करों से महिलाओं और लड़कियों को बचाने वालों से यह जानकारी सामने आई है।

ग्लोबल मार्च अगेंस्ट चाइल्ड लेबर और बचपन बचाओ आंदोलन के हवाले से आई खबर के अनुसार नोटबंदी के कारण मानव तस्करी लगभग खत्म हो गई है।

संगठन के अनुसार नोटबंदी के बाद के एक महीने में एक भी लड़की की तस्करी की रिपोर्ट नहीं आई है। इनके अनुसार यह संगठित इंडस्ट्री लगभग 20 लाख

करोड़ रुपये की है।

कारोबार के लिहाज से श्रेष्ठ 144 देशों में भारत 97 नंबर पर

फोर्ब्स की वर्ष 2015 की सूची : भारत, घाना और कजाकिस्तान से भी नीचे।

कारोबार के लिहाज से श्रेष्ठ 144 देशों की सूची में भारत 97वें स्थान पर है। फोर्ब्स ने वर्ष 2015 के लिए यह सूची जारी की है। इसमें भारत को उसने कजाकिस्तान (57वें) और घाना (79वें) से भी नीचे रखा है। इसकी वजह देश में व्यापार, मौद्रिक स्वतंत्रता और भ्रष्टाचार-हिंसा जैसी चुनौतियों से निपटने आदि के मानकों पर भारत का प्रदर्शन खराब रहता है।

फोर्ब्स ने कहा है कि हालाँकि भारत खुली अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ रहा है लेकिन पुरानी आत्मनिर्भर नीतियों का अंश अभी बरकरार है। उसके मुताबिक, युवा आबादी और निर्भरता अनुपात कम होने, बेहतर बचत और निवेश दर तथा वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ बढ़ते समन्वय के कारण भारत की लॉन्ग-टर्म ग्रोथ का परिदृश्य सकारात्मक है।

सकारात्मक पहलू भी बताये–भारत के प्रति निवेशकों की धारा 2014 की शुरुआत से सुधरी है। इसका कारण चालू खाते के घाटे में कमी तथा चुनाव बाद आर्थिक सुधारों के आगे बढ़ने की उम्मीद है। इससे पूँजी प्रवाह बढ़ा और रुपया स्थिर हुआ। कुछ मामलों में देश का प्रदर्शन अच्छा है।

ब्रिटेन 10वें और जापान 23वें स्थान पर–सूची में ब्रिटेन और जापान तीन पायदान के सुधार के साथ क्रमशः 10वें तथा 23वें स्थान पर रहे हैं। वहीं, जर्मनी दो पायदान के सुधार के साथ 18वें स्थान पर रहा है। वहीं, चीन को तीन पायदान के सुधार के साथ 94वें स्थान पर रखा गया है। दक्षिण अफ्रीका 47वें, मैक्सिको 53वें, कजाकिस्तान 57वें, जांबिया 73वें, घाना 79वें, रूस 81वें, श्रीलंका 91वें, पाकिस्तान 103वें तथा बांग्लादेश 121वें स्थान पर हैं।

यह गिनाई चुनौतियाँ–देश में व्याप्त गरीबी और भ्रष्टाचार, महिलाओं-

लड़कियों के खिलाफ हिंसा-भेदभाव, अकुशल बिजली उत्पादन तथा वितरण प्रणाली, बौद्धिक संपदा अधिकार सही तरीके से लागू न हो पाना, अधिक व्यय, सब्सिडी का सही वितरण न होना, अपर्याप्त गुणवत्तायुक्त मूल तथा उच्च शिक्षा, अपर्याप्त परिवहन, कृषि संबंधी ढाँचागत सुविधा, गैर-कृषि रोजगार के अवसर सीमित होना, गाँवों से शहरों में आने वालों के लिए व्यवस्था न होना।

लिंगानुपात घटकर 887

आय व साक्षरता का परिणाम भुगत रही बेटियाँ

देश में एक तरफ लोगों की आय बढ़ रही है, वे साक्षर भी हो रहे हैं, लेकिन चिंता की बात है कि बेटियाँ घट रही हैं।

सरकार की एक रिपोर्ट के अनुसार, पिछले 65 साल के इतिहास में पहली बार लिंगानुपात 946 से घटकर 887 हो गया है। देश में यदि बाल लिंगानुपात को देखे तो 6 वर्ष से कम उम्र की लड़कियों का जन्म दर प्रति हजार लड़कों की तुलना में काफी गिर रहा है। 1961 में जहाँ प्रति एक हजार लड़कों के मुकाबले 976 लड़कियाँ थीं, वहीं 2011 में प्रति एक हजार लड़कों के मुकाबले 914 लड़कियाँ रह गईं।

बेटों की चाहत भारी–इंडिया स्पेंड की जून में एक रिपोर्ट के अनुसार प्रमुख कारण समाज में लड़कों की चाहत है, लेकिन आय में वृद्धि भी एक प्रमुख कारण माना जा रहा है। साक्षरता के चलते लिंग परीक्षण करवा रहे हैं।

इनकम में बढ़ोतरी–जहाँ देश की प्रति व्यक्ति आय बढ़कर 72,889 हो गई है, वही कुल प्रजनन दर (प्रति महिला बच्चों का जन्म की औसत दर) में गिरावट आई है। 1960 में यह 5.9 था, जो 2012 में गिरकर 2.5 और 2014 में 2.4 हो गई है। इसके साथ ही लिंगानुपात में भी गिरावट आई है। अन्य एशियाई देशों में इसी तरह की प्रवृत्तियों को देखा जा रहा है, जहाँ यह माना जाता है कि केवल बेटा ही उत्तराधिकारी और परिवार को आगे बढ़ाने का कार्य कर सकता है। साथ ही दहेज से होने वाली कमाई भी पुत्र से ही संभव है। उदाहरण के तौर पर चीन में प्रति व्यक्ति आय 7,924.7 डॉलर है, वहीं लिंगानुपात 869 हैं।

आय बढ़ी, प्रजनन दर घटी–65 साल के इतिहास में पहली बार लिंगानुपात

946 से घटकर 887, 72,889 हो गई बढ़कर प्रति व्यक्ति आय, प्रजनन दर 5.9 से 2.4 हुई।

जीने का तरीका बदलेंगे, तो ही प्रदूषण से बचेंगे

खेतों में ठूंठ जलाने का आसान समाधान मौजूद, असली समस्या उद्योगों व वाहनों से निकल रहा धुआँ

देविंदर शर्मा, पर्यावरणविद और कृषि विशेषज्ञ

फेस मास्क अब नया फैशन हो गया है। नई दिल्ली में ऐसे मास्क बेचने वाली दुकानों के बाहर लगी लंबी कतारें बताती हैं कि मध्यवर्ग ने राहतभरी साँस लेने का आसान रास्ता खोज लिया है। जो थोड़ा ज्यादा खर्च कर सकते हैं, वे अमेजन ऑनलाइन ट्रेडिंग पोर्टल पर क्रेडिट कार्ड का प्रयोग कर एयर प्यूरीफायर खरीद रहे हैं। विशाल बाजार को देखते हुए अमेजन ने एयर प्यूरिफायर खरीदने के लिए अलग पेज बनाया है। मिनी प्यूरीफायर, कार प्यूरीफायर और घर के लिए बड़े प्यूरीफायर के विकल्प मौजूद हैं।

नई दिल्ली सरकार एक कदम और आगे बढ़कर पाँच सबसे व्यस्त ट्रैफिक चौराहों पर विशाल प्यूरीफायर स्थापित करने वाली है। 27 घनफीट की दैत्याकार मशीन इस रफ्तार से स्वच्छ वायु फेंकेगी कि विषैले तत्त्व दूर धकेल दिये जायेंगे। सीधे शब्दों में कहे तो चौराहों पर मौजूद विषैले प्रदूषक तत्त्व तेजी से कम प्रदूषण वाली जगहों पर फैलाये जायेंगे। इससे देर-सवेर ऐसी स्वच्छ हवा के गलियारे बनाने की नौबत आयेगी, जिनसे आप स्वच्छ हवा लेने के लिए गुजरेंगे। यह ठीक एयरपोर्ट पर पाये जाने वाले स्मोकिंग लाउंज जेसे होंगे, जहाँ जाकर आप धूम्रपान कर सकते हैं। मामला ठीक उलट हो जायेगा। बाहर की हवा इतनी प्रदूषित होगी कि स्पेशल वातायन गलियारे बनाने होंगे ताकि आपको थोड़ी स्वच्छ व शुद्ध हवा मुहैया कराई जा सके। इसे पढ़कर आपके चेहरे पर मुस्कान आ सकती है, लेकिन यह कोई खयाली पुलाव नहीं है। चीन ने तो बीजिंग में पाँच विशाल वेंटीलेशन कॉरिडोर का निर्माण शुरू भी कर दिया है ताकि लोगों को सेहत के लिए खतरनाक स्मॉग (धुएँ भरे कोहरे) से राहत दी जा सके।

यह सब यहीं खत्म नहीं होगा। मुझे तो उस दिन का इंतजार है, जिस दिन नई

दिल्ली लोकप्रिय स्थानों पर विशाल एलईडी स्क्रीन लगाएगी ताकि लोगों को बताया जा सके कि सूर्योदय ओर सूर्यास्त के दृश्य कैसे दिखते हैं। स्मॉग भरे सप्ताह में जब कोहरा लगातार देखने में बाधा बना रहता हे, बीजिंग ठीक यही करता है। निःसंदेह वह दिन दूर नहीं है जब हिमालय की ताजी हवा से भरी बोतलों की अमेजन, फ्लिपकार्ट और स्नैपडील पर सबसे ज्यादा बिक्री होगी। कनाडा के पर्वतों से भरकर लाई ताजी हवा की बोतलों का बीजिंग में बहुत क्रेज है।

यदि नई दिल्ली लगातार नकार की मुद्रा में रहकर हवा की खराब होती गुणवत्ता के लिए पड़ोसी पंजाब व हरियाणा के किसानों को दोष देती रहेगी तो मुझे पक्का विश्वास है कि भविष्य का जो नजारा मैंने ऊपर खींचा है, वह जल्द ही वास्तविक रूप ले लेगा। धनी और बढ़ता मध्यवर्ग जिम्मेदारी स्वीकारने की बजाय बलि का बकरा खोज रहा है। वे न तो यह चाहते हैं कि कोई उनकी विलासी जीवनशैली पर सवाल उठाये और न वे खुद कोई त्याग करना चाहते हैं। ऐसे में बढ़ते प्रदूषण स्तर के लिए किसानों को दोष देना बहुत आसान है। पंजाब, हरियाणा और राजस्थान में खेतों में बचे ठूंठ जलाने से नई दिल्ली गैस चैम्बर नहीं बनी है। नई दिल्ली पिछले 15 वर्षों से गैस चैम्बर बनी हुई है। मुझे याद है करीब 15 साल पहले मैंने एक बड़े अखबार के लिए लेख लिखा था कि कैसे नई दिल्ली गैस चैम्बर बन गई है तो दिग्गज सितार वादक पंडित रविशंकर ने मुझे यह कहने के लिए फोन किया कि रात को ड्राइविंग करते समय उन्हें ऐसा लगता है, जैसे वे धुएँ की सुरंग में ड्राइव कर रहे हैं। जब 1998 में यह प्रस्ताव लाया गया कि सार्वजनिक परिवहन को कम प्रदूषक सीएनजी पर लाना अनिवार्य बनाया जाये तो लोगों के साथ मीडिया ने भी उसका कैसा विरोध किया था। सुप्रीम कोर्ट के निर्देश नहीं होते तो दिल्ली ऑटो रिक्शे के घिनौने धुएँ से बच नहीं पाती।

इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि धान की फसल काटने के बाद किसान बचे ठूंठ जलाने पर उतारू हो जाते हैं। धान की फसल सितंबर अंत या अक्टूबर की शुरुआत में ली जाती है और अगले पंद्रह दिनों में ही किसानों को फसल बाजार में बेचकर, जमीन तैयार करने के बाद अगली फसल के लिए बीज बोने होते हैं। समस्या कम्बाइन हार्वेस्टर मशीन से पैदा हुई है, जिनका इस्तेमाल इतने बरसों में लगातार बढ़ता रहा है। ये मशीनें ऊपर से अनाज की बाली वाला हिस्सा काट लेती हैं

और करीब एक फुट तना छोड़ देती है। इन्हें खेत से हटाना अत्यधिक मेहनत और लागत का काम है। चूँकि जानवर इन्हें खाते नहीं और न ये मिट्टी में जल्दी गलते हैं। ऐसे में किसान के पास सबसे अच्छा विकल्प इन्हें जलाना ही है।

मुझे लगता है कि नेशनल ग्रीन ट्रिब्यूनल ने जब ठूंठ जलाने वाले किसानों पर जुर्माना तय किया तो उससे जमीनी वास्तविकता को ध्यान में नहीं लिया। जलाने की बजाय उचित पद्धति अपनाई जाये तो प्रति एकड़ 5 हजार रुपये खर्च आता है, जो सरकार देने को तैयार नहीं है। चूँकि पंजाब के किसान की औसत आय प्रति एकड़ 3400 रुपये से ज्यादा नहीं होती, उससे इस लागत की अपेक्षा करना ठीक नहीं होगा।

मैं बार-बार कहता रहा हूँ कि हर विनाश बिजनेस का मौका होता है। चाहे इन मशीनों पर सब्सिडी दी गई हो, अधिक मशीनों का मतलब किसानों पर अधिक कर्ज। सही समाधान यह है कि कम्बाइन हार्वेस्टर के साथ बैलर लगाना अनिवार्य कर दिया जाये। जब भी कम्बाइन हार्वेस्टर चले तो इसमें ठूंठ काटने के लिए दूसरी ब्लैड हो जो काटकर गठानें बनाकर ढेर लगा दे। इन गठानों को बिजली बनाने के लिए और कम्पोस्टिंग के लिए व्यावसायिक रूप से बेचा जा सकता है। पंजाब की मिट्टी को ऑर्गनिक पदार्थों की अत्यधिक आवश्यकता है।

नई दिल्ली को प्रदूषण से निपटने के लिए क्रांतिकारी कदम उठाने होंगे। 8.80 लाख वाहन तो पंजीकृत है ही, रोज 5.6 लाख शहर में प्रवेश करते हैं। धुआँ उगलते उद्योगों, निर्माण उद्योग, कोयला आधारित बिजली केंद्र और डीजल से प्रदूषण पर कोई रोक न होने से मध्यवर्ग बेधड़क प्रदूषण फैलाता रहता है। शक्तिशाली लॉबियों ने ऑड-ईवन नीति भी फिर नहीं लगाने दी, क्योंकि आलसी मध्यवर्ग कोई त्याग नहीं करना चाहता। देश में जो त्रुटिपूर्ण शहरीकरण चल रहा है, दिल्ली का स्मॉग उसका नतीजा है। धनी वर्ग ने हवा का निजीकरण कर दिया है और मध्यवर्ग इसे खरीदकर अपना रास्ता निकाल रहा है। यह उस आर्थिक विकास के मॉडल की कीमत है, जो पटरी छोड़ चुका है। यही वक्त है कि उचित सुधार किये जाये। आप कल का इंतजार नहीं कर सकते।

राजधानी दिल्ली देश का सबसे प्रदूषित शहर

दिल्ली देश का सबसे प्रदूषित शहर है जबकि राजस्थान का अलवर भी देश के 10 प्रदूषित शहरों की सूची में शामिल है। देश के 168 शहरों के अध्ययन में इसका

खुला हुआ।

ग्रीनपीस संस्था की ताजा रिपोर्ट-1 रैंक मिली दिल्ली को, 168 शहरों में दिल्ली सबसे ज्यादा प्रदूषित शहर।

झारखंड के सबसे ज्यादा 4 शहर प्रदूषित-48 शहर जीवन जीने के लायक नहीं, 14 शहर में ही कम प्रदूषण पाया गया।

पीएम-10 की कितनी मात्रा-दिल्ली 268, गाजियाबाद 258, इलाहाबाद 250, बरेली 240, फरीदाबाद 240, अलवर 227, झरिया 228, रांची 2016, कुसंदा 214, बस्ताकोल 211 (नोट-पीएम 10 की मात्रा यूजी/एम3 में है)।

कौन जिम्मेदार-68 प्रतिशत वाहनों का धुआँ, 22 प्रतिशत कारखाने का धुआँ, 10 प्रतिशत खेतों या जंगलों में लगने वाली आग।

दुनिया में हमारा रूतबा है कम

दुनिया के प्रभावशाली देशों की सूची में अमरीका, ब्रिटेन और जापान जैसे देश लगातार प्रभावशाली बने हुए हैं। इस सूची में भारत का रूतबा कम है। 2 अंक मिले हैं भारत को कुल पाँच अंकों की रेटिंग सिस्टम में।

क्रेडिट सूसी रिसर्च इंस्टीट्यूट की वैश्वीकरण पर प्रभाव रिपोर्ट-5 मानदंडों पर आकलन-1. अर्थव्यवस्था का आकार, 2. सैन्य शक्ति, 3. रणनीतिक और सामाजिक ताकत, 4. प्रशासन की स्थिति, 5. विशिष्टता।

5 अंक यानी सबसे ताकतवर-अमरीका के अलावा कुछ छोटे देशों जैसे-हांगकांग, सिंगापुर, स्विट्जरलैंड, बेल्जियम, डेनमार्क आदि को मिली है यह रेटिंग।

4 अंक यानी प्रभावशाली-ब्रिटेन के अलावा यूरो जोन के जर्मनी, फ्रांस, इटली और स्पेन के साथ जापान को माना गया है प्रभाव डालने में सक्षम।

3 अंक यानी बढ़ सकता है रूतबा-चीन इस मामले में सबसे आगे है।

2 अंक यानी रूतबा है लेकिन कम-भारत के साथ ब्राजील और रूस इस क्रम पर हैं।

1 अंक यानी प्रभावशील नहीं-दक्षिण अफ्रीका की रेंटिंग सबसे निचले स्तर पर है।

दिलचस्प निष्कर्ष-2016 में टूटा था वैश्विक दायरा, 2017 में शक्ति के केंद्रों में होगी बढ़ोतरी।

आज मिटाये भोगवाद का रावण

प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी,
संस्कृत विद्वान् और राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान,
नई दिल्ली के पूर्व कुलपति

हमारे भीतर राम और रावण दोनों समाहित हैं। अब यह समझना होगा कि हम किसके साथ जीना चाहते हैं क्योंकि आखिर में तो राम ही सार्थक जीवन की ओर ले जाते हैं। इसलिए हम भोगवाद का विरोध करें, खुद में संयम स्थापित करें। धार्मिक अनुशासन से चलें।

विजयदशमी इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह सामाजिक वैमनस्य, दमन-शोषण पर आधारित राजनीतिक व्यवस्था के अंत का प्रतीक है। बुराई रूपी रावण और इन्हें समाप्त करने के लिए राम रूपी संरक्षक हमारे बीच वक्त-वक्त पर उभरता है।

आज समाज में रावण ही रावण को जला रहा है। सच्चाई में तो राम हममें मौजूद नहीं है। इसलिए नई पीढ़ी को धर्म के नाम पर केवल कर्मकाण्ड में न फँसाया जाये, उन्हें जीवन की वास्तविकता से अवगत कराया जाये।

विजयदशमी का पर्व अन्याय से संघर्ष का प्रतीक है। चूँकि रावण एक आततायी है। उसने साधुओं, ऋषियों और आमजन को सताया है इसलिए उसका अंत जरूरी है। वहीं राम के वनवास का उद्देश्य यही है कि जो एक प्रताड़ित करने वाली संस्कृति और शासन प्रणाली है, उसका रावण वध के साथ अंत किया जाये। यानी विजयदशमी दमन और अन्याय पर आधारित व्यवस्था के अंत का पर्व है। साथ ही यह पर्व स्त्री के सम्मान की रक्षा का प्रतीक भी है। जिस तरह रावण स्त्रियों का अपहरण करता था, उनकी गरिमा भंग करता था, उन्हें अपने साथ रखकर प्रताड़ित करता था, स्त्रियों को भोग की वस्तु समझता था जो कि आज भी एक सामाजिक बुराई है। रावण बलात्कारी मानसिकता का प्रतिबिंब है। उसने रंभा नामक अप्सरा का बलात्कार किया था और उसे शाप मिला था कि वह भस्म होगा और नष्ट हो जायेगा। आखिर में ऐसा ही होता है। आज सामाजिक अन्याय के विरुद्ध लड़ाई और स्त्रियों के सम्मान की रक्षा के लिए खड़े होने की खातिर विजयदशमी महत्वपूर्ण पर्व है। सामाजिक वैमनस्य, दमन-शोषण पर आधारित राजनीति व्यवस्था और असामाजिक

तत्त्वों का अंत अच्छी सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था के लिए जरूरी होता है। इन्हें खत्म करने के लिए एक राम हमेशा चाहिए होता है। बुराई रूपी रावण और इन्हें समाप्त करने के लिए रामरूपी संरक्षक हमारे बीच वक्त-वक्त पर उभरता है। राम का चरित्र हमारी सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण है। वह एक आदर्श चरित्र का प्रतीक है, जिसकी सख्त जरूरत है। जिस तरह राम ने सीता के अलावा किसी महिला पर गलत दृष्टि नहीं डाली। एक पत्नी के साथ पूरा जीवन निभाया राम ही सारे राजा और क्षत्रियों में ऐसे राजा हुए, जिन्होंने इस आदर्श को निभाया। न सिर्फ स्त्री का सम्मान किया बल्कि पत्नीव्रत को जीवनभर निभाया। जब राम ने सीता को निर्वासित करने के बाद यज्ञ किया और उन्हें यज्ञ में पत्नी की जरूरत पड़ी तो उन्होंने कहा कि पत्नी तो सीता ही है और वही रहेगी इसलिए उनकी मूर्ति रखकर यज्ञ संपन्न किया। स्त्री के साथ सह-अस्तित्व और उसे पूरा सम्मान देने की कथा को विजयदशमी पर हमारे जीवन में अपनाने की जरूरत है। अपरिग्रह का आदर्श हमारे ऋषियों ने रखा, राम उन्हें सम्मान देते हैं क्योंकि वे भोगवादी संस्कृति से दूर वन में रहते हैं। रामकथा का जो प्रवचन करते हैं या जो रामकथा दिखाई जाती है, उनमें बताना चाहिए कि जिस तरह लोग चीजों की सतत खरीददारी कर घर में अंबार लगाते है और जिस प्रकार आज उपभोक्तावादी संस्कृति लगातार बढ़ रही है, वह जीवन को नुकसान पहुँचा रही है। इससे नई पीढ़ी को अवगत कराना चाहिए। आज उपभोक्तावादी संस्कृति से मुक्ति पाना रामायण का वास्तविक संदेश माना जाना चाहिए। राम का आदर्श भी यही बताता है। रामकथा में भी राम आखिर में रामराज्य त्यागकर महाप्रयाण करते हैं। महाभारत में भी पांडव राज त्यागकर महाप्रयाण करते हैं। लेकिन दुःखद बात यह है कि बाजार ने रामायण, महाभारत को भी उपभोक्तावाद से जोड़ दिया है। बुद्धिजीवी लोगों को शिक्षित करे कि जिस तरह रावण के बड़े-बड़े पुतलों पर खर्चा किया जाता है, उसमें आतिशबाजी से हम पर्यावरण ही प्रदूषित करते हैं। वह सिर्फ व्यवसाय से जुड़ा है। **दिक्कत यह है कि धर्म का जो सांगठनिक रूप है, वह आज बाजार से जुड़ गया है। जो संत-महात्मा प्रवचन करते हैं, वे भी व्यावसायिक गतिविधियाँ करते हैं।** विजयदशमी जैसे पर्व सिर्फ मनोरंजन का जरिया नहीं रहना चाहिए। बुद्धिजीवियों, पत्र-पत्रिकाओं का भी दायित्व है कि वह समाज को दिशाबोध कराये। आज समाज मानसिक शांति की बजाय शारीरिक-

भौतिक शांति की ओर भाग रहा है। इंसान को ही वस्तु मान लिया गया है। सत्ता में बैठे लोग हों, विज्ञापन कंपनियाँ हों और यहाँ तक कि रामायण पर प्रवचन करने वाले लोग हों, वे भोगवाद को बढ़ावा ही दे रहे हैं। इस संस्कृति को खत्म करने के लिए एक नियमित अभियान की कमी है। इस संस्कृति के रावण को हतोत्साहित करने के लिए हमारे भीतर राम पैदा करने की जरूरत है। आज समाज में रावण ही रावण को जला रहा है। सच्चाई में तो राम हममें मौजूद नहीं है। इसलिए नई पीढ़ी को धर्म के नाम पर केवल कर्मकाण्ड में न फँसाया जाये, उन्हें जीवन की वास्तविकता से अवगत कराया जाये। शैक्षणिक व्यवस्था बच्चों में आदर्श और अनुशासन स्थापित करने वाली हो। बच्चों को बाजार के हवाले न करें, उन्हें वस्तु न बनने दें। उनमें भोगवाद का रावण स्थापित न होने दे बल्कि वास्तविकता का राम प्रतिष्ठापित करें। जैसा सर्वविदित हैं। अब यह समझना होगा कि हम किसके साथ जीना चाहते हैं क्योंकि आखिर में तो राम ही सार्थक जीवन की ओर ले जाते हैं। इसलिए एक सामूहिक प्रयास होना चाहिए कि हम भोगवाद का विरोध करें, खुद में संयम स्थापित करें। धार्मिक अनुशासन से चलें। सबसे महत्वपूर्ण बात है कि हम स्वयं के विवेक को जागृत करे ताकि कोई रावण हमारे भीतर न पैठ पाये।

छोटी-सी भावहिंसा भी बड़ी है-
अशक्य अनुष्ठान ही बड़ी हिंसा से

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

नहीं करूँ मैं नहीं करूँ, अनावश्यक पाप मैं नहीं करूँ।
आहार-विहार-निहार-शयन में, जो होता पाप उसे अशक्य मानूँ।। (1)

अशक्य अनुष्ठान में भी अनंत जीव हिंसा, एकेन्द्रिय से ले त्रस तक।
किन्तु भावहिंसा/(संकल्पी हिंसा) रहित होने से, नहीं बंधते घोर पापकर्म।। (2)

किन्तु द्रव्यहिंसा बिना भी भावहिंसा से, बंधते हैं घोर पापकर्म।
राग द्वेष मोह क्रोध ईर्ष्या घृणा, परनिंदा अपमानादि है भाव हिंसामय।। (3)

राग द्वेषादि से तो कभी भी स्व-पर को, नहीं मिलते हैं लाभ व सुख।
तब मैं क्यों करूँ अनावश्यक पाप, जो स्व-पर अलाभ व दुःखप्रद।। (4)

क्षुधा-तृषा शांत हेतु भोजन पानी, रोग दूर हेतु लेता हूँ औषधि।
मल-मूत्र भी त्याग करूँ उसी हेतु भी, गमन-शयन व थूकना आदि।। (5)

उक्त सभी काम में मरते हैं, अनंत सूक्ष्म त्रस स्थावर जीव।
तथापि भावहिंसा नहीं होने से, नहीं बंधते हैं घोराति पापकर्म।। (6)

तन्दुलमत्स धीवर वैश्या चोर आतंकवादी, सतत करते हैं भावहिंसा।
द्रव्यहिंसा सहित व रहित भी, भावहिंसा से बांधते घोर पापकर्म।। (7)

भावहिंसा से होते तनाव भय उद्वेग, द्वंद्वादि विभिन्न मानसिक रोग।
जिससे होते हैं विभिन्न शारीरिक रोग, जिससे जीवन होता दुःखपूर्ण।। (8)

भले बाह्य तप-त्याग करूँ शक्ति अनुसार, अनावश्यक हिंसा नहीं करूँ।
राग-द्वेषादि है भावहिंसा, ऐसी अनावश्यक हिंसा मैं न करूँ।। (9)

अनावश्यक मैं स्वयं को क्यों कष्ट दूँ, पापी बनूँ व रोगी बनूँ।
इहलोक-परलोक में दुःखी बनूँ, संसार चक्र में भ्रमण करूँ।। (10)

भावहिंसा से जाता तंदुलमत्य, सप्तम नरक जहाँ तक नहीं जाता क्रूर सिंह।
तथाहि भावहिंसा से स्त्री-पुरुष, क्रमशः जाते नरक छट्टा व सप्तम तक।। (11)

भाव ही प्रमुख है पुण्य-पाप हेतु, आस्रव-बंध-संवर-निर्जरा मोक्ष।
'कनक' चाहे पुण्य-संवर-निर्जरा, जिससे पाऊँ अंत में मोक्ष।। (12)

सीपुर, दिनांक 25.12.2016, रात्रि 8.24

संदर्भ-

हिंसा का विश्वस्वरूप

आत्म-परिणाम-हिंसन हेतुत्वातत्सर्वमेव हिंसैतत्।
अनृत-वचनादि-केवलमुदाहृतं शिष्य-बोधाया।। (42)

All this indulgence is "Himsa' because it injures the real nature of Jiva. Falsehood, etc. are only given by way of illustravation for the instruction of the disciple.

व्याख्या-भावानुवाद-जिससे आत्म परिणाम का हिंसन/हनन होता है वह सब हिंसा ही है। असत्य आदि पापों का कथन प्राथमिक कम बुद्धि वाले शिष्यों को

समझाने के लिए उदाहरण के रूप में बताया गया है। प्रमाद से युक्त कषाय से संयुक्त जीव के परिणाम ही हिंसा के लिए कारण होता है। असत्य आदि पाप हिंसा की ही अवस्थान्तर है। तथापि शिष्यों को समझाने के लिए असत्य आदि पापों का भी कथन किया जाता है। पन्द्रह प्रकार के प्रमादों से आत्मा के परिणाम कलुषित होते है, मलिन होते है इसलिये वह प्रमाद ही हिंसा है।

हिंसा का विश्व लक्षण

यत्खलुकषाय-योगात् प्राणानां द्रव्य भावरूपाणां।
व्यपरोपणस्य करणं सुनिश्चिता भवति सा हिंसा।। (43)
अघ्नन्नापि भवेत्पापीः निघ्नन्नापि न पापभाक्।
परिणाम-विशेषेण यथा धीवर-कर्षकौ।। (1)
स्वयमेवाऽऽत्मनाऽऽत्मानं हिनस्त्यात्माप्रमादतः।
पूर्वं प्राण्यंतराणां च पश्चात्स्याच्च न वा वधः।। (2)

Any injury whatsoever to the material or conscious vitalities caused through passionate activity of mind, body or speech is Himsa, assuredly.

व्याख्या-भावानुवाद-निश्चय से कषाय के योग से द्रव्य भाव रूप प्राणों का हनन होना हिंसा है। निश्चय से कषाय के योग से अर्थात् क्रोध, मान आदि चार कषाय हास्यादि नो कषाय के योग से इन्द्रिय श्वासोच्छ्वास शरीर आदि द्रव्य प्राण तथा ज्ञान आदि भाव प्राणों का हनन करना या उन्हें पीड़ा देना हिंसा है। इन द्रव्य एवं भाव प्राणों का प्रमत्त योग से व्यपरोपण करना, विनाश करना, वियोजन करना निश्चय से हिंसा है। गोम्मट्टसार में कहा भी है-

पाँच इन्द्रिय प्राण, मन, वचन, काय रूप तीन बल प्राण श्वासोच्छ्वास एवं आयु मिलाकर के दस प्राण होते हैं। इस गाथा कथित यथायोग्य दसों प्राण का वियोग करना या उन्हें क्षति पहुँचाना हिंसा है। यहाँ पर परिणाम को प्राधान्यता दी गई है। धर्म संग्रह में भी कहा गया है-

जिससे कोई जीव का घात नहीं हुआ वह भी पापी हो सकता है तथा जिससे जीव का घात हुआ है वह भी पाप से रहित हो सकता है। जिस प्रकार धीवर ने जाल बिछाया परन्तु एक भी मछली नहीं पकड़ पाया तो भी वह हिंसक ही है और खेत में

काम करते हुए किसानों से अनेक क्षुद्र जीव मर जाते है तो भी वे अहिंसक है। क्योंकि धीवर का परिणाम मछली पकड़ने का है और किसान का परिणाम अन्न उत्पादन करने का है। दोनों के परिणाम भिन्न-भिन्न होने के कारण उसके फल भी भिन्न-भिन्न होते हैं। प्रमाद के कारण स्वयंमेव ही स्वयं की आत्महत्या पहले कर लेता है। पश्चात् दूसरों की हिंसा करे या ना करे। प्राणियों की हिंसा अधर्म का कारण है ऐसा जानना चाहिए।

अहिंसा और हिंसा का भावात्मक लक्षण

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः।। (44)

Assuredly, the non-appearance of attachment and other (passions) is Ahimsa, and their appearance is Himsa. This is a summary of the Jaina scripture.

व्याख्या-भावानुवाद-राग-द्वेष आदि दूषित परिणाम का आत्मा में उत्पन्न नहीं होना निश्चय से अहिंसा है। इसी ही राग-द्वेष आदि दूषित परिणामों का उत्पन्न होना जिनागम में संक्षिप्त से हिंसा कहा है। जिनागम का संक्षेप या सार यह है कि अप्रयत्न रूप से आचरण करना हिंसा है एवं प्रयत्नपूर्वक आचरण करना अहिंसा है।

प्राणघात से भी यत्नाचारी हिंसक नहीं

युक्ताचरणस्य सतो रागाद्यावेशमंतरेणापि।
न हि भवतिजातु हिंसा, प्राणव्यपरोपणादेव।। (45)

There never is Himsa when vitalities are injured, if a person is not moved by any kind of passions and is carefully following Right conduct.

व्याख्या-भावानुवाद-जो प्रयत्न आचरण से युक्त है तथा रागादि आवेश से रहित है उससे हिंसा नहीं होती है। युक्त आचरण से सहित मुनीश्वरों के रागादि भावों के आवेश के बिना कदाचित् प्राण व्यपरोपण होने पर भी हिंसा नहीं होती है।

अयत्नाचारी प्राणघात के बिना भी हिंसक

व्युत्थानावस्थायां, रागादीनां वश प्रवृत्तानाम्।
म्रियतां जीवो मा वा धावत्यग्रे ध्रुवं हिंसा।। (46)

And, if one acts carelessly, moved by the influence of

passions, there certainly advances Himsa in front of him whether a living being is killed or not.

व्याख्या-भावानुवाद-राग आदि परिणाम से वशीभूत जीव प्रमाद अवस्था में रहते हुए दूसरे जीव मरे या नहीं मरे अवश्य हिंसक होता है। आचार्यश्री ने इस प्रकरण में कहा कि राग आदि परिणाम से वशीभूत जीवों के तथा प्रमाद से सहित जीवों के आगे-आगे हिंसा दौड़ती रहती है। इसका रहस्य यह है कि वह अवश्यमेव हिंसक होता है अर्थात् त्रस-स्थावर जीवों के प्राणों का हनन करने वाले या नहीं करने वाले भी प्रमादी जीव अवश्य ही हिंसक होते हैं।

समीक्षा-आचार्य कुंदकुंद देव ने भी प्रवचनसार (सत्यसाम्यसुखामृतम्) में कहा भी है-

मरदु व जियदु व जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा।
पयदस्स णत्थि बंधो हिंसामेत्तेण समिदस्स।। (217)

बाह्य में दूसरे जीव का मरण हो या मरण न हो जब कोई निर्विकार स्वसंवेदन रूप प्रयत्न से रहित है तब उसके निश्चय शुद्धचैतन्य प्राण का घात होने से निश्चय हिंसा होती है। जो कोई भली प्रकार अपने शुद्धात्म स्वभाव में लीन है, अर्थात् निश्चय समिति को पाल रहा है तथा व्यवहार में ईर्या, भाषा, एषणा, आदान निक्षेपण, प्रतिष्ठापना इन पाँच समितियों में सावधान है, अंतरंग-बहिरंग प्रयत्नवान् है, प्रमादी नहीं है उसको बंध नहीं होता है। यहाँ यह भाव है कि अपने आत्म स्वभाव रूप निश्चय प्राण का विनाश करने वाली रागादि परिणति निश्चय हिंसा कही जाती है। रागादिक उत्पन्न करने के लिए बाहरी निमित्त रूप जो परजीव का घात है सो व्यवहार हिंसा है, ऐसे दो प्रकार हिंसा जाननी चाहिए, किन्तु विशेष यह है कि बाहरी हिंसा हो या न हो जब आत्म स्वभाव रूप निश्चय प्राण का घात होगा तब निश्चय हिंसा ही मुख्य है।

उच्चलियम्हि पाए इरियासमिदस्स णिगमत्थाए।
आबाधेज्ज कुलिंगं अरिज्जं तं जोगमोसेज्ज।। (217/1)
ण हि तस्स तण्णिमित्ते बंधो सुहुमो य देसिदो समये।
मुच्छापरिग्गहोच्चिय अज्झप्पमाणदो दिट्ठे।। (217) प्रवचनसार

आचार्यश्री ने इस गाथा में हिंसा एवं अहिंसा की यथार्थ सूक्ष्म व्यापक आगमोक्त परिभाषा दी है। धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य निश्चय से स्वयं के ऊपर अवलंबित है दूसरों पर अवलंबित नहीं हैं भले निमित्त और भी कुछ हो सकता हैं। स्वशुद्ध आत्मस्वरूप

से विचलित होना च्युत होना ही हिंसा है। आत्मस्वरूप से च्युत होना ही अयत्नाचार है, प्रमाद है। इसलिये कहा गया है कि ''प्रमत्तयोगात्-प्राणव्यपरोपणं हिंसा'' प्रमाद के योग से भाव प्राण एवं द्रव्य प्राणों को क्षति पहुँचाना, नष्ट करना हिंसा है। प्रमाद योग से रहित वस्तुतः हिंसा होती नहीं भले द्रव्य हिंसा हो, क्योंकि आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष भाव के ऊपर ही अवलंबित है, भले इसके लिए बाह्य निमित्त और कुछ भी हो। कुंदकुंद देव ने प्रवचनसार में कहा भी है-

अज्झवसिदेण बंधो सत्ते मारेहिं मा व मारे हि।
एसो बंधसमासो जीवाणं णिच्छयणयस्स।। (274) पृ.250 प्र.सार

निश्चयनय का कहना है कि जीवों को मारो या न मारो, किन्तु जीवों के मारने रूप भाव से कर्मों का बंध तो होता है। यही बंधत्व का संक्षेप है।

निश्चयनय से प्रत्येक जीव अजर, अमर, शाश्वतिक है। इसलिये कोई किसी को नहीं मार सकता है। अशुद्ध निश्चयनय से स्वयं की हिंसा स्वयं ही कर सकता है क्योंकि अशुद्ध निश्चयनय से जो राग, द्वेष, मोह परिणाम होते हैं उनसे स्वस्वरूप की हिंसा हो जाती है। इसलिये अशुद्ध निश्चयनय से स्वयं की हिंसा स्वयं करता है और इस भाव से दूसरों के द्रव्यप्राण एवं भावप्राण को क्षति पहुँचाता है अतः उसे हिंसा कहते हैं। इसलिये वस्तुतः स्वअध्यवसाय, स्वप्रमाद या स्वअयत्नाचार ही हिंसा है।

उपर्युक्त समस्त सिद्धांतों से यह सिद्ध होता है कि भाव निर्मलता/पवित्रता ही वस्तुतः अहिंसा है और भावों की मलिनता, अपवित्रता ही हिंसा है। जिनकी भावों में निर्मलता होगी अर्थात् भाव अहिंसा होगी वे द्रव्य हिंसा भी नहीं कर सकते हैं। कथंचित् उनसे द्रव्य हिंसा हो जाती है परन्तु जो भाव हिंसक हैं उनसे द्रव्य हिंसा हो या नहीं हो वे निश्चय ही हिंसक हैं। जिस प्रकार आत्मा को पवित्र करने के लिए जो उपवास करते हैं उस उपवास के कारण उदर व शरीरस्थ अनेक जीव मरते हैं। छद्मस्थ के शरीर में अनंत बादर निगोदिया जीव व अनेक त्रस जीव भी रहते हैं परन्तु वही जीव जब केवली बन जाता है तो उनके शरीरस्थ अनंत जीव ध्यानरूपी अग्नि से कुछ निकल भी जाते हैं कुछ मर भी सकते हैं तथापि आत्मकल्याण के लिए उपवास करने वालों को एवं शुक्लध्यान करने वालों को जीव हिंसा जनित दोष नहीं लगता है न पाप बंध ही होता है परन्तु जो स्वयंभूरमण समुद्र में महामत्स्य रहता है उसके कान में रहने वाला तन्दुल मत्स्य नरक जाता है। भले वह जीवन में एक जीव को भी नहीं मारता है न मांस खाता है केवल महामत्स्य के कान के मैल को खाता है। इससे सिद्ध होता है कि भावों की पवित्रता ही यथार्थ से अहिंसा है परन्तु वर्तमान में

देखने में आता है कि कुछ व्यक्ति जो अहिंसा का उपदेश करते हैं दूसरों को अहिंसा का पाठ पढ़ाते हैं वे ही अधिक कुटिल, मायाचारी, दूसरों को ठगने वाले, धूर्त, अच्छी चीज में नकली मिलावट करने वाले, अधिक ब्याज लेकर दूसरों का शोषण करने वाले, घी में डालडा तथा चर्बी मिलाने वाले, शराब एवं चर्म का व्यापार करने वाले, मुर्गी पालन करने वाले, हिंसात्मक सौंदर्य प्रसाधन सामग्री का व्यापार व प्रयोग करने वाले होते हैं। ऐसे व्यक्ति जीवन में एक भी द्रव्य हिंसा न करे व एक भी माँस का टुकड़ा न खाये तो भी हिंसक हैं, पापी हैं, क्योंकि जब भावों में अहिंसा होगी तो ऐसी विचित्र हिंसा इनसे हो ही नहीं सकती है। इसका मतलब यह नहीं द्रव्य हिंसा करे या द्रव्य हिंसा की छूट है। परन्तु भाव अहिंसा के लिए भावों की निर्मलता के लिए द्रव्य हिंसा भी सर्वथा वर्जनीय है क्योंकि जो जानबूझकर द्रव्य हिंसा करेगा वह अवश्य ही भाव हिंसक ही होगा। इसलिये भावों की निर्मलता के लिए भाव हिंसा एवं द्रव्य हिंसा दोनों त्यजनीय है। करूणा के अवतार महात्मा बुद्ध ने अप्रमाद को अमृत कहा है एवं प्रमाद को मृत्यु कहा। उन्हीं का यह कथन यथार्थ है। क्योंकि अप्रमाद से हिंसा नहीं होती है और यह अहिंसा ही अमृत (अ+मृत=न मरना, अमर, विकार न होना, क्षति न होना) है तथा प्रमाद ही मृत्यु (विनाश, घात, क्षति, दुःख, मरण) है। अतएव अप्रमादी अमृतपद (मोक्ष, शाश्वतिक, निर्वाण) को प्राप्त करता है और प्रमादी मृत्युपद (मरण, दुःख, संसार) को प्राप्त करता है। धम्मपद में उन्हीं का अमर संदेश निम्न प्रकार से लिपिबद्ध है-

अप्पमादो अमतपदं पमादो मच्चुनो पदं।

अप्पमत्ता न मीयन्ति ये पमत्ता यथा मता।।

प्रमाद न करना अमृत पद का साधक है और प्रमाद करना मृत्युपद का साधक। अप्रमादी नहीं मरते, किन्तु प्रमादी तो मरे तुल्य ही हैं।

उट्ठानेनप्पमादेन सञ्ञमेन दमेन च।

दीपं कयिराथ मेधावी यं ओघो नाभिकीरति।। (5)

मेधावी पुरुष उद्योग, अप्रमाद, संयम और दम (इन्द्रिय दमन) द्वारा अपने लिए ऐसा द्वीप बनावे, जिसे बाढ़ नहीं डुबा सके।

पमादमनुयुञ्जन्ति बाला दुम्मेधिनो जना।

अप्पमादञ्च मेधावी धनं सेट्ठं व रक्खति।। (6)

मूर्ख, अनाड़ी लोग प्रमाद में लगते हैं, बुद्धिमान श्रेष्ठ धन की भाँति अप्रमाद की

रक्षा करता है।

मा पमादमनुयुञ्जेय मा कामरतिसन्थवं।

अप्पमत्तो हि ज्ञायन्तो पप्पोति विपुलं सुखं।। (7)

मत प्रमाद में फँसो, मत काम-रति में लिप्त हो। प्रमाद रहित पुरुष ध्यान करते हुए महान् सुख को प्राप्त होता है।

पमादं अप्पमादेन यदा नुदति पण्डितो।

पञ्ञापासादमारुह असोको सोकिनिं पजं।। (8)

जब पण्डित प्रमाद को अप्रमाद से हटा देता है तब वह शोक रहित हो, शोकाकुल प्रजा को, प्रजारूपी प्रासाद पर चढ़कर जैसे पर्वत पर खड़ा पुरुष भूमि पर स्थित वस्तु को देखता है, वैसे ही वीर पुरुष अज्ञानियों को देखता है।

अप्पमत्तो पमत्तेसु सुत्तेसु बहुजागरो।

अबलस्सं व सीघस्सो हित्वा याति सुमेधसो।। (7)

प्रमादी लोगों में अप्रमादी तथा (अज्ञान की नींद में) सोये लोगों में (प्रज्ञा से) जागरणशील बुद्धिमान उसी प्रकार आगे निकल जाता है, जैसे तेज घोड़ा दुर्बल घोड़े से आगे हो जाता है।

आत्मघाती दूसरों के प्राणघात के बिना भी हिंसक

यस्मात्सकषायः सन् हन्त्यात्मा-प्रथममात्मनाऽऽत्मानम्।

पश्चाज्जायेत न वा हिंसा प्राव्यंतराणां तु।। (47)

Because under the influence of passion, the person first injures the self, through the self; whether there is subsequently an injury caused to another being or not.

व्याख्या-भावानुवाद-कषाय से युक्त जीव सर्वप्रथम स्व-आत्म स्वरूप की हिंसा करता है। पश्चात् अन्य जीवों की हिंसा हो या नहीं हो। सकषाय जीव कषाय के वशीभूत होकर बहिरात्मा होकर अंतरात्मा का हनन करता है। आत्मवध होने के पश्चात् अन्य जीवों का वध हो भी सकता है नहीं भी हो सकता है।

प्रमादयोग में नियम से हिंसा होती

हिंसायामविरमणं हिंसापरिणमनमपि भवति हिंसा।

तस्मात् प्रमत्तयोगे प्राण-व्यपरोपणं नित्यम्।। (48)

विकहा तहा कसाया, इंदियणिद्दा तहेव पणयो य।
चदु चदु पणमेगेगं होंति पमादा हु पण्ण रसा।।
अथ प्रमादावस्थायां एव हिंसा प्रवर्तनं इत्यर्थः।

The want of abstinence from Himsa, and indulgence, in Himsa both constitute Himsa; and thus whenever there is careless activity of mind, body or speech, there always is injury to vitalities.

व्याख्या-भावानुवाद-हिंसा से प्रतिज्ञापूर्वक विरक्त नहीं होना भी हिंसा ही है। जीव वध से अविरमण हिंसा होती है। हिंसा का परिणाम भी हिंसा ही है। मानसिक हिंसात्मक परिणाम ही हिंसा है। इसलिए प्रमत्त योग से प्राण व्यपरोपण (भाव हिंसा) अवश्य होता है। गोम्मट्टसार में पंद्रह प्रकार के प्रमादों का वर्णन निम्न प्रकार किया गया है-

चार प्रकार के विकथा, चार प्रकार के कषाय, पाँच प्रकार की इन्द्रियाँ, एक निद्रा तथा एक प्रणय इस प्रकार प्रमाद पंद्रह प्रकार के हैं।

अयोग्य न मानते हैं हित-मित-प्रिय बातें

(चाल : तेरे प्यार का आसरा....., सायोनारा....., तुम दिल की.....)

जब तक स्वयं में न योग्यता आती,
हित-मित-प्रिय वार्ता/(बातों) भी नहीं सुहाती।
यथा रावण, कंस, हिरण्य कश्यप, जरासंध,
हिटलर, मुसोलिन, तानाशाह, सद्दाम प्रसिद्ध।। (1)

बटरा मूँग, अभव्य जीव अंध सुवर्ण पाषाण,
नहीं सिद्ध होते, भले मिले बाह्य कारण।
रेत से न उत्पन्न होता तेल कदापि,
अयोग्य न समझते हितोपदेश तथाहि।। (2)

सर्वज्ञ हितोपदेशी निर्दोषी तीर्थंकर,
करते उपदेश पक्षपात रहित होकर।
किसी से न होता उनका राग-द्वेष-मोहादि,

तथापि अनेक जीव न मानते उन्हें भी।। (3)

महात्मा बुद्ध ईसा महात्मा सुकरात,
उन्हें भी न मानने वाले हुए बहुत।

ठगी-चापलूस-वेश्या-अज्ञानी कुयोग्य को,
मानने वाले भी होते हैं अनेक लोग।। (4)

स्वलक्ष-विचार-स्वार्थ-योग्यतानुसार,
मानते हैं अन्य की बातें स्वमनानुसार/(स्वमतानुसार)।

रात्रिचर अंधेरा में देखते हैं स्पष्ट,
दिनचर अंधेरा में न देखते हैं स्पष्ट।। (5)

सुपात्र को अतः गुरु देते उपदेश,
मच्छर जोंक सम (कुयोग्य) को न देते उपदेश।

उषर भूमि में किसान यथा न बोते बीज,
दूध पिलाने से भी सर्प उगलता विष।। (6)

स्व-पर-विश्व हितकारी वचन योग्य,
आत्महित सहित परहित करना योग्य।

आत्म पतनकारी हर कार्य त्यागने योग्य,
अयोग्य को 'कनक' न कहे बातें सुयोग्य।। (7)

सीपुर, दिनांक 27.12.2016, मध्याह्न 2.56

संदर्भ-

स्टार्टअप के लिए डिग्री अहम नहीं

सफल स्टार्टअप करने और उसे ऊँचाई पर ले जाने में न तो शिक्षा का बहुत महत्व है और न ही युवा ऊर्जा का। यह बात सामने आई है हाल ही में रिसर्च फर्म एक्सईएलईआर8 की ओर से जारी रिसर्च रिपोर्ट में।

किसी स्टार्टअप को शिखर पर ले जाने के लिए न तो आईआईएम, आईआईटी जैसे बड़े संस्थानों से पढ़ाई करना जरूरी है, न ही 25 वर्ष का युवा होने की जरूरत है। एशिया की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था भारत में टेक्नोलॉजी उद्यमी की औसत

आयु 28 या 29 वर्ष होती है, जबकि स्टार्टअप को पहली फंडिंग मिलते वक्त भारत में व्यवसायी की औसत उम्र 32 साल से ज्यादा होती है।

एक्सईएलईआर8 की ओर से की गई रिसर्च के मुताबिक, भारत में सिर्फ 50 फीसदी यानी आधे उद्यमियों के पास ही ग्रेजुएशन या पोस्ट ग्रेजुएशन की डिग्री होती है। इनमें से भी कुछ ही लोगों के पास आईआईटी या आईआईएम जैसे बड़े संस्थानों की डिग्री होती है। इस सर्वे में देखा गया कि स्टार्टअप शुरू करने वाले अधिकतर उद्यमी किसी बड़े संस्थान से डिग्री लेकर नहीं आये हैं।

साक्षर मूर्ख एवं शिक्षित (बहुश्रुत)

अबहुश्रुत का स्वरूप

जे यावि होइ निव्विज्जे भद्धे लुद्धे अणिग्गहे।

अभिक्खणं उल्लवई अविणीए अबहुस्सुए।। (2) (उत्तराध्ययन सूत्र पृ. 175)

जो विद्या रहित है, विद्यावान् होते हुए भी अहंकारी है, जो (रसादि में) लुब्ध (गृद्ध) है, जो अजितेन्द्रिय है, बार-बार असंबद्ध बोलता (बकता) है तथा जो अविनीत है, वह अबहुश्रुत है।

अबहुश्रुतता और बहुश्रुतता की प्राप्ति के कारण

अह पंचहिं ठाणेहिं जेहिं सिक्खा न लब्भई।

थम्भा कोहा पमाएणं रोगेणाऽऽलस्सएण य।। (3)

पाँच स्थानों (कारणों) से (ग्रहणात्मिका और आसेवनात्मिका) शिक्षा प्राप्त नहीं होती, (वे इस प्रकार हैं)-1. अभिमान, 2. क्रोध, 3. प्रमाद, 4. रोग और 5. आलस्य (इन्हीं पाँच कारणों से बहुश्रुतता होती है)।

अह अट्ठाहिं ठाणेर्हि सिक्खासीले त्ति वुच्चई।

अहस्सिरे सया दत्ते न य मम्ममुदाहरे।। (4)

नासीले न विसीले न सिया अइलोलुए।

अकोहणे सच्चरए सिक्खासीले त्ति वुच्चई।। (5)

इन आठ स्थानों (कारणों) से शिक्षाशील कहलाता है-(1) जो सदा हँसी-मजाक न करे, (2) जो दांत (इन्द्रियों और मन का दमन करने वाला) हो, (3) जो दूसरों का मर्मोद्घाटन नहीं करे, (4) जो अशील (सर्वथा चारित्रहीन) न हो, (5)

जो विशील (दोषों-अतिचारों से कलंकित व्रत-चारित्र वाला) न हो, (6) जो अत्यंत रसलोलुप न हो, (7) (क्रोध के कारण उपस्थित होने पर भी) जो क्रोध न करता हो (क्षमाशील हो) और (8) जो सत्य में अनुरक्त हो, उसे शिक्षाशील (बहुश्रुतता की उपलब्धि वाला) कहा जाता है।

अविनीत और विनीत का लक्षण

अह चउदसहिं ठाणेहिं वट्टमाणे उ संजए।
अविणीए वुच्चई सो उ निव्वाणं च न गच्छइ।। (6)

चौदह प्रकार से व्यवहार करने वाला अविनीत कहलाता है और वह निर्वाण प्राप्त नहीं करता।

अभिक्खणं कोही हवइ पबन्धं च पकुव्वई।
मेत्तिज्जमाणो वमइ सुयं लद्धूण मज्जई।। (7)
अवि पावपरिक्खेवी अवि मित्तेसु कुप्पई।
सुप्पियस्सावि मित्तस्स रहे भासइ पावगं।। (8)
पइण्णवाई दुहिले भद्धे लुद्धे अणिग्गहे।
असंविभागी अचियत्ते अविणीए त्ति वुच्चइ।। (9)

(1) जो बार-बार क्रोध करता है, (2) जो क्रोध को निरंतर लंबे समय तक बनाये रखता है, (3) जो मैत्री किये जाने पर भी उसे ठुकरा देता है, (4) जो श्रुत (शास्त्रज्ञान) प्राप्त करके अहंकार करता है, (5) जो स्खलनारूप पाप को लेकर (आचार्य आदि की) निन्दा करता है, (6) जो मित्रों पर भी क्रोध करता है, (7) जो अत्यंत प्रिय मित्र का भी एकांत (परोक्ष) में अवर्णवाद बोलता है, (8) जो प्रकीर्णवादी (असंबद्धभाषी) है, (9) द्रोही है, (10) अभिमानी है, (11) रसलोलुप है, (12) जो अजितेन्द्रिय है, (13) असंविभागी है (साथी साधुओं में आहारादि का विभाग नहीं करता) और (14) अप्रीति-उत्पादक है।

अह पन्नरसहिं ठाणेहिं सुविणीए त्ति वुच्चई।
नीयावती अचवले अमाई अकुऊहले।। (10)
अप्पं चाऽहिक्खिवई पबन्धं च न कुव्वई।
मेत्तिज्जमणो भयई सुयं लद्धुं न मज्जई।। (11)
न य पावपरिक्खेवी न य मित्तेसु कुप्पई।

आप्पियस्सावि मित्तस्स रहे कल्लाण भासई।। (12)
कलह-डमरवज्जए बुद्धे अभिजाइए।
हिरिमं पडिसंलीणे सुविणीए त्ति वुच्चई।। (13)

पन्द्रह कारणों से साधक सुविनीत कहलाता है (1) जो नम्र (नीचा) होकर रहता है, (2) अचपल (चंचल नहीं) है, (3) जो अमायी (दंभी नहीं निश्छल) है, (4) जो अकुतूहली (कौतुक देखने में तत्पर नहीं) है, (5) जो किसी का तिरस्कार नहीं करता, (6) जो न क्रोध को लंबे समय तक धारण किये रहता, (7) मैत्रीभाव रखने वाले के प्रति कृतज्ञता रखता हैं, (8) श्रुत (शास्त्रज्ञान) प्राप्त करके मद नहीं करता, (9) स्खलना होने पर जो (दूसरों की) निन्दा नहीं करता, (10) जो मित्रों पर कुपित नहीं होता, (11) अप्रिय मित्र का भी एकांत में गुणानुवाद करता है, (12) जो वाक्कलह और मारपीट (हाथापाई) से दूर रहता है, (13) जो कुलीन होता है, (14) जो लज्जाशील होता है और (15) जो प्रतिसंलीन (अंगोपांगों का गोपन-कर्त्ता) होता है, ऐसा बुद्धिमान् साधक सुविनीत कहलाता है।

कुप्रवृत्ति से दूर हेतु करूँ अशुद्ध भाव दूर

(''अतिक्रम-व्यतिक्रम-अतिचार-अनाचार कुप्रवृत्ति का क्रमविकास व नाश उपाय'')

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे....., सायोनारा.....)

जिया रे! भाव अशुद्ध न करऽऽ
भाव अशुद्ध ही होता अतिक्रमऽऽ होते व्यतिक्रम अतिचारऽऽ
जिससे होता है अनाचारऽऽ...(ध्रुव)...

भाव यदि न होगा अशुद्धऽऽ न होंगे अतिक्रम-व्यतिक्रमादिऽऽ
जिससे न होंगे पापबंधऽऽ जिससे होगी आत्मा की उन्नतिऽऽ
पाप से परे पुण्य व आत्मसिद्धिऽऽ...जिया रे...(1)...

मानसिक अशुद्धि होता अतिक्रमऽऽ सदाचार उल्लंघन होता व्यतिक्रमऽऽ
कुचारित्र में प्रवृत्ति अतिचारऽऽ आसक्तिपूर्वक वर्तन अनाचारऽऽ
उत्तरोत्तर होती गर्हित से गर्हिततरऽऽ...जिया रे...(2)...

ये सभी होती है चैनरियक्सन मेंऽऽ उत्तोरत्तर पापात्मक शक्ति वृद्धिऽऽ
बीज से अंकुर व वृक्षफूल फलऽऽ तथाहि होती अशुद्ध भाव में वृद्धिऽऽ
बीज अभाव से न होगी सम्वृद्धिऽऽ...जिया रे...(3)...

स्फूलिंग से यथा होती अग्नि प्रबलऽऽ स्फूलिंग अभाव से न होगी अग्निऽऽ
स्फूलिंग बुझाना होता है सरलऽऽ प्रबल अग्नि बुझाना कठिन होतीऽऽ
अतिक्रम को करो न उत्पत्तिऽऽ...जिया रे...(4)...

नशीली वस्तु व्यसन छोड़ना कठिनऽऽ सेवन ही नहीं करना (तो) सरलऽऽ
जलकर सही होना तो कठिनऽऽ अग्नि से दूर रहना तो सरलऽऽ
अतः तू शुद्ध भाव ही करऽऽ...जिया रे...(5)...

शुद्ध/(शुभ) भाव हेतु न धन चाहिएऽऽ नहीं चाहिए बाह्य आडम्बरऽऽ
स्व-आत्म स्वभाव है शुद्ध भावऽऽ अतः स्वभाव का आलंबन करऽऽ
'कनक' तू शुद्ध-बुद्ध बनऽऽ...जिया रे...(6)...

सीपुर, दिनांक 27.12.2016, रात्रि 8.16

संदर्भ-

निष्कषाय, इन्द्रिय संयम, सद्बुद्धि के लिए या इनसे युक्त होकर धार्मिक क्रिया-काण्ड किया जाता है तो वह सब मोक्षमार्ग के लिए साधक है अन्यथा बाधक/व्यर्थ/अनुपयोगी है।

दोष परिशोधन के उपाय

विनिन्दनालोचनगर्हणैरहं, मनो वचः काय कषाय निर्मितम्।
निहन्मि पापं भवदुःखकारणं, भिषग्विषं मन्त्रगुणैरिवाखिलम्।। (7)

I destroy sin, from which all ills in the cosmos proceed, whether committed through mind, or word, or body, or passion, by self analysis, self censure, and repentance, just as a doctor completely removes all effects of poison by the force of incantation.

भावार्थ-यथा मांत्रिक वैद्य मंत्र के गुणों के द्वारा संपूर्ण विष को दूर कर देता है तथा मैं मन-वचन-काय तथा कषाय से निर्मित पाप जो कि संसारके दुःख के कारणभूत हैं उसे निंदा, गर्हा, आलोचना के द्वारा नष्ट करता हूँ।

प्राप्त शिक्षाएँ-जिस प्रकार शरीर में विष प्रवेश करने पर पीड़ा से लेकर मृत्यु तक संभव है परन्तु मंत्र, औषधि आदि के द्वारा उस विष को दूर/नष्ट करके स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते है उसी प्रकार मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनुमोदना तथा क्रोध-मान-माया-लोभ से उत्पन्न पाप (कर्म) जो संसार के विभिन्न दुःखों के कारण हैं उसे दूर/नष्ट करके सांसारिक दुःखों को भी नष्ट करके अक्षय, अनंत सुख प्राप्त कर सकते हैं। स्व-दोष को दूर करने के लिए निन्दा (आत्म साक्षी पूर्वक स्वयं-दोष विश्लेषण) गर्हा (गुरु-साक्षी पूर्वक स्व-दोष-विश्लेषण), आलोचना करना चाहिए। यह आध्यात्मिक शुद्धिकरण, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, सामाजिक-न्यायिक प्रक्रिया से भी सरल-सहज-शुद्ध-गुणकारी-चिरस्थायी-सर्वदोष निवारक तथा शारीरिक-मानसिक-सामाजिक-आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए अभौतिक रामबाण औषधि है।

विविध स्तरों के दोष

अतिक्रमं यद्विमतेर्व्यतिक्रमं, जिनातिचारं सुचरित्र कर्मणः।
व्यधामनाचार मपि प्रमादतः-प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये।। (8)

O World-victor! I purify myself by performing expurgation for all foolish deviations from rectitude due to indifference whether it be Atikrama,Vyatikrama, Atichara and Anachara.

भावार्थ-हे जिनेन्द्र! मैंने कुबुद्धि से सुचारित्र रूपी क्रिया का प्रमाद के कारण जो अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार किया हो, उसकी शुद्धि के लिए प्रतिक्रमण करता हूँ।

प्राप्त शिक्षाएँ-किसी भी अंतरंग एवं बहिरंग कारणों के वश से प्रमाद जनित भाव-व्यवहारों से ज्ञात-अज्ञात से भी कुछ न कुछ दोष उत्तम चारित्र में लगना संभव है। ऐसी परिस्थिति में उस दोष को दूर करना प्रत्येक सुखकामी, विकास को चाहने वाले महानुभावों का नैतिक-आध्यात्मिक कर्त्तव्य है क्योंकि जब तक जीव छद्मस्थ (असर्वज्ञ, अवीतरागी, घाति कर्म से युक्त) रहता है तब तक पूर्व के उपार्जित कर्म के उदय से दोष उत्पन्न होना स्वाभाविक है। इसलिए आध्यात्मिक प्रगति, मानसिक शांति के लिए, शारीरिक व मानसिक रोग दूर करने के लिए सामाजिक प्रतिष्ठा/सम्मान/शुद्धता आदि के लिए प्रतिक्रमण सहज-सरल आध्यात्मिक उपाय है।

विविध स्तरों के दोषों के कारण

क्षतिं मनः शुद्धि विधेरतिक्रमं-व्यतिक्रमं शील व्रतेर्विलङ्घनम्।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं-वदन्त्यनाचार मिहाति सक्तताम्।। (9)

Atikrama is the defiling of the pure condition of mind, and Vyatikrama is transgression of pure mental action, Atichara, O Lord! is indulgence in sensual desires, and Anachara is defined as excessive attachment (to them).

भावार्थ-हे प्रभु! इस लोक में (1) मानसिक शुद्धि की विधि में क्षति होने को अतिक्रम, (2) शीलव्रत (सदाचार) के उल्लंघन को व्यतिक्रम, (3) विषयों में प्रवृत्ति करने को अतिचार, (4) विषयों में अत्यंत आसक्त होने को अनाचार कहते हैं।

प्राप्त शिक्षाएँ-आत्मिक शुद्धि का इच्छुक दोषों के विभिन्न स्तर को जानता है/जानना चाहिए। क्योंकि दोषों के स्तर/डिग्री/मात्रा के अनुसार ही उसको दूर करने के उपाय भी तदनुकूल होते हैं। ''जो पिण्डे सो ब्रह्माण्डे,'' ''यथा मति तथा गति'' के अनुसार दोष या गुण का अंकुर मन-भाव से ही होता है और विकास क्रम से वृद्धिगत होता है। यदि बीज का अभाव ही हो या अंकुर होने ही नहीं दिया जाए तो आगे का विकास क्रम भी संभव नहीं है। इसलिए दोष के विकास क्रम को नहीं चाहने वाला महानुभाव प्रथमतः मानसिक अशुद्धता को ही उत्पन्न नहीं करता है/उत्पन्न होने को ही रोक देता है।

इससे विपरीत पापी/दोषी/अन्यायी/अत्याचारी/दुराचारी/आतंकवादी मन में उत्पन्न अशुद्धता को नहीं रोकता है/रोकना नहीं चाहता है/या जान-बूझकर बढ़ाता है। मन में अशुद्धता का उत्पन्न होना ही (1) अतिक्रम है।

इस दोष के विकास क्रम में सदाचार का उल्लंघन करके (2) व्यतिक्रम के स्तर पर पहुँच जाता है। पुनः उस स्तर से बढ़ता हुआ विषयों (क्रोध-मान-माया-लोभ, हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य, परिग्रह आदि) में प्रवृत्ति करता है। इस स्तर को (3) अतिचार कहते हैं।

''**अभ्यास से गुणवत्ता में वृद्धि होती है**'' के नियमानुसार अतिचार में प्रवृत्त करता-करता दोषों की मात्रा को बढ़ाते हुए दोष के चरम स्तर में पहुँच जाता है जिस स्तर को (4) अनाचार कहते हैं। इस अवस्था में विषयों में अत्यंत आसक्ति होती है। इस विभिन्न स्तरों को समझने के लिए धूम्रपान, मद्यपान, नशीली वस्तुओं के

सेवन करने वालों के विभिन्न स्तरों की प्रकृति-प्रवृत्ति उदाहरण के योग्य है।

अधिकरण के भेद

अधिकरणं जीवाजीवाः। (7)

The dependence relates to the souls and the non-souls.

अधिकरण जीव और अजीव रूप है।

जीव और अजीव ये जो आस्रव के अधिकरण और आधार हैं। यद्यपि सम्पूर्ण आस्रव जीव के ही होता है तथापि आस्रव के निमित्त जीव और अजीव दोनों के होते हैं। क्योंकि हिंसा आदि के उपकरण रूप से जीव और अजीव ही अधिकरण होते हैं। ये दोनों अधिकरण दस प्रकार के हैं-विष, लवण, क्षार, कटुक, अम्ल, स्नेह, अग्नि और खोटे रूप से प्रयुक्त मन-वचन और काय।

जीवाधिकरण के भेद

आद्यंसंरम्भसमारम्भारम्भयोगकृतकारितानुमत-
कषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः। (8)

The first जीवाधिकरण i.e. dependence on the souls in of 108 kinds due to differences in the following :

1. संरम्भ Determination to do a thing.
2. समारम्भ Preparation for it i.e. collecting materials for it.
3. आरम्भ Commencement of it.

These three can be done by the three yogas i.e. activity of mind, body and speech, thus there are 3 x 3 = 9 kinds. Each one of the 9 kinds can be done in three ways i.e. by doing oneself or having it done by others or by approval or acquiescence. Thus we get 27 kinds. Each one of the 27 may be due to the 4 possions. That gives us 27 x 4 = 108 kinds.

पहला जीवाधिकरण संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ के भेद से 3 प्रकार का योगों के भेद से तीन प्रकार का कृत, कारित और अनुमत के भेद से तीन प्रकार का तथा कषायों के भेद से चार प्रकार का होता हुआ परस्पर मिलने से 108 प्रकार का है।

इस सूत्र में जीव के निमित्त से होने वाले आस्रव के भेद का वर्णन किया गया

है। उस आस्रव के भेद 108 प्रकार के हैं। 108 प्रकार के आस्रव के प्रायश्चित्त स्वरूप या उसको दूर करने के लिए माला में 108 मणियाँ होती हैं। संरम्भ आदि का वर्णन निम्न प्रकार है-

(1) संरम्भ-प्रयत्न विशेष को संरम्भ कहते हैं। प्रमादी पुरुष का प्राणघात आदि के लिए प्रयत्न करने का संकल्प संरम्भ है।

(2) समारम्भ-हिंसादि साधनों को एकत्र करना समारम्भ है। साध्य क्रिया के साधनों को इकट्ठा करना समारम्भ है।

(3) आरम्भ-तत्त्व का कथन करने से सर्व ही (ये तीनों शब्द) भाव साधन हैं। अर्थात् संरम्भण संरम्भ, समारम्भण समारम्भ और आरम्भण आरम्भ हैं।

(4 से 6) मन, वचन, काय योग-'कायवाङ्मनस्कर्मयोगः' इस सूत्र में योग शब्द का व्याख्यान कर चुके हैं।

(7) कृत-कृत वचन स्वातंत्र्य प्रतिपत्ति के लिए है। स्वतंत्र रूप से जो आत्मा के द्वारा किया जाता है, वह कृत है।

(8) कारित-पर प्रयोग की अपेक्षा कारित का अभिधान है। जो दूसरे के द्वारा कराया जाता है, वह कारित कहलाता है।

(9) अनुमोदना-अनुमत शब्द से प्रयोजक के मानसिक परिणामों की स्वीकृति दर्शायी गई है। अर्थात् करने वाले के मानस परिणामों की स्वीकृति अनुमत है। जैसे कोई मौनी व्यक्ति किये जाने वाले कार्य का यदि निषेध नहीं करता है तो वह उसका अनुमोदक माना जाता है, उसी प्रकार कराने वाला प्रयोक्ता होने से और उन परिणामों का समर्थक होने से अनुमोदक है।

(10 से 13) क्रोध, मान, माया और लोभ विशेष-क्रोधादि कषायों का लक्षण कह चुके हैं कि जो आत्मा को कसती हैं, दुःख देती है, वे कषाय हैं।

अर्थ का अर्थान्तर से जाना विशेष है। विशेष किया जाता है वा विशेष करना, वह विशेष है अथवा विशिष्ट को विशेष कहते हैं।

विशेष का सम्बन्ध सबके साथ लगाना चाहिये। वह विशेष शब्द प्रत्येक के साथ सम्बन्धित है। जैसे-संरम्भविशेष, समारम्भविशेष, आरम्भविशेष, कृतविशेष, कारितविशेष, अनुमोदितविशेष, योगविशेष और कषायविशेष।

संरम्भ, समारम्भ, आरम्भ, योग, कृत, कारित, अनुमोदित तथा कषायविशेष

के द्वारा आस्रव का भेद होता है। तात्पर्य यह है कि क्रोधादि चार और कृत आदि तीन के भेद से कायादि योगों के संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ से विशिष्ट (सम्बन्ध) करने पर प्रत्येक के छत्तीस-छत्तीस भेद होते हैं।

संरम्भो द्वादशधा क्रोधादिकृतादिकायसंयोगात्।
आरम्भोसमारम्भौ तथैव भेदास्तु षट्त्रिंशत्।

कहा भी है-क्रोधादि और कृतादि के द्वारा कायसंरम्भ बारह प्रकार का है। इसी प्रकार समारम्भ और आरम्भ के साथ कृत, कारित, अनुमोदना तथा क्रोध, मान, माया, लोभ का काययोग के साथ संयोग करने से बारह-बारह भेद होते हैं। काय के साथ आस्रव के ये छत्तीस भेद हैं, वैसे ही वचनयोग और मनोयोग के साथ छत्तीस-छत्तीस भेद करने चाहिए। इन सबका जोड़ करने पर जीवाधिकरण आस्रव के कुल एक सौ आठ भेद होते हैं।

सूत्र में 'च' शब्द क्रोधादि कषायों के विशेषों का संग्रह करने के लिए है। अर्थात् 'च' शब्द से कषायों के भेद और उपभेदों का भी ग्रहण हो जाता है। अतः अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन कषाय के सोलह भेदों से गुणा करने पर जीवाधिकरण आस्रव के चार सौ बत्तीस भेद भी होते हैं।

प्रश्न-संरम्भ, समारम्भ, आरम्भ आदि के आस्रवत्व कैसे हैं?

उत्तर-क्रोधादि से आविष्ट पुरुष के द्वारा कृत संरम्भ आदि क्रियाएँ कषायों से अनुरंजित होने से, नीले वस्त्र के समान अधिकरण भाव को प्राप्त होती हैं। जैसे नीले रंग में डाला गया वस्त्र नीले रंग से अनुरंजित होने से नीला हो जाता है, उसी प्रकार संरम्भ आदि क्रियाएँ अनंतानुबंधी आदि कषायों से अनुरंजित होती हैं, अतः इन संरम्भादि में भी जीवाधिकरणत्व सिद्ध होता है।

मेरी (आ. कनकनन्दी) अनुशासन की मर्यादा

('सूरी कनक' तू स्वशिष्यों को ही अनुशासन कर अन्य को नहीं आचार्य केवल स्वसंघ के शिष्यों को अनुशासन करते है अन्य को नहीं)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरे....., सायोनारा.....)

जिया रे! तू स्व-शिष्यों को सुधारऽऽ

विश्व कल्याण की भावना कर तूऽऽ अन्य को आदेश न करऽऽ...(ध्रुव)...

सिस्साणुह कुसले धम्माइरियेऽऽ भण्णमाणस्स सगणवासिस्सऽऽ
ससंघवासी शिष्य अनुग्रह तू करऽऽ शिक्षा-दीक्षा-प्रायश्चित्त सहऽऽ
हितकारी ही कठोर वचन भी सहऽऽ परसंघ हेतु न करो अनुशासनऽऽ...जिया रे...(1)...

स्व-शिष्य प्रति तेरा यह कर्त्तव्य पालनऽऽ उपगूहन स्थितिकरण वात्सल्य पालनऽऽ
अन्यथा तूझे लगेंगे अनेक दोषऽऽ प्रायश्चित्त योग्य होगा आचरणऽऽ
स्व व स्वसंघ का होगा पतनऽऽ...जिया रे...(2)...

स्वाध्याय हेतु व प्रायश्चित्त हेतुऽऽ अमित-अप्रिय वचन भी श्रेयऽऽ
किन्तु हित व उपगूहन स्थितिकरणऽऽ वात्सल्य प्रभावना होना अनिवार्यऽऽ
राग द्वेष मोह पक्षपात से शून्यऽऽ...जिया रे...(3)...

अपस्श्रावीगुण सह हो प्रायश्चित्तऽऽ आत्मानुशासन युक्त अनुशासनऽऽ
आगम व गुरु आज्ञा पालन हेतुऽऽ समता-शांति-आत्मविशुद्धिकरणऽऽ
शुभोपयोगमय तेरा ये धर्मऽऽ...जिया रे...(4)...

लोकतंत्रात्मक साम्यवादी शासन करऽऽ न कर तानाशाही भेदभावपूर्णऽऽ
तथापि तेरा न यह अंतिम लक्षऽऽ लक्ष्य आत्मविशुद्धि आत्मानुशासनऽऽ
आत्महित सह परहित करणीयऽऽ...जिया रे...(5)...

सभी जीवों की करो (सदा) मंगलकामनाऽऽ हित-मित-प्रिय रूप करो देशनाऽऽ
परनिन्दा-अपना-अनुशासन रिक्तऽऽ विश्वहित हेतु करो चिन्तन-लेखनऽऽ
न करणीय तुझे पर संघानुशासनऽऽ आगम-अनुभव का करो पालनऽऽ...जिया रे...(6)...

आचार्य पदवी का भी तू न कर गर्वऽऽ न करो दुरुपयोग पदवी काऽऽ
तू तो आधि-व्याधि-उपाधि रहितऽऽ शुद्ध-बुद्ध व अमूर्तिक तत्त्वऽऽ
'कनक' तू तो सच्चिदानंद तत्त्वऽऽ...जिया रे...(7)...

सीपुर, दिनांक 28.12.2016, रात्रि 8.02 व प्रातः 6.55

संदर्भ-

श्रुतजलधिपारगेभ्यः, स्वपरमतविभावनापटुमतिभ्यः।
सुचरित तपोनिधिभ्यो, नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्यः।। (1)

भावार्थ-जो श्रुतरूपी समुद्र में पारंगत हैं, स्याद्वादमत जैनमत व एकांतरूप परमत के विचार में, ज्ञान में जिनकी बुद्धि चतुर है, अति प्रखर है, सम्यक्चारित्र और तप निधियाँ हैं तथा जिनके पास अतिमात्र में गुण है, ऐसे आचार्यें, गुरुओं को मेरा नमस्कार हो।

छत्तीसगुणसमग्गे, पंचविहाचारकरण संदरिसे।
सिस्साणुग्गहकुसले, धम्माइरिये सदा वंदे।। (2)

भावार्थ-जो आचार्य परमेष्ठी 12 तप 10 धर्म 6 आवश्यक 3 गुप्ति और 5 आचार रूप 36 मूलगुणों से पूर्ण हैं, पंचाचार-दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्रचार, तपाचार और वीर्याचार का स्वयं आचरण करते हैं शिष्यों से भी आचरण करवाते हैं, शिष्यों पर अनुग्रह करने में निपुण है; ऐसे धर्माचार्य की मैं सदा वंदना करता हूँ।

गुरुभक्ति संजमेण य, तरंति संसारसायरं घोरं।
छिण्णंति अट्ठकम्मं, जम्मणमरणं ण पावेंति।। (3)

भावार्थ-हे भव्यात्माओं! गुरुभक्ति व संयम की आराधना से जीव संसाररूपी भीषण समुद्र को पार करते हैं व अष्ट कर्मों का क्षय कर जन्म-मरण के दुःखों से छूट जाते हैं।

ये नित्यं व्रतमंत्रहोमनिरता, ध्यानाग्नि होत्राकुलाः।
षट्कर्माभिरतास्तपोधन धनाः, साधुक्रियाः साधवः।।
शीलप्रावरणा गुणप्रहरणाश्चंद्रार्क तेजोऽधिकाः।
मोक्षद्वार कपाट पाटनभटाः प्रीणंतु मां साधवः।। (4)

भावार्थ-जो आचार्य परमेष्ठी व्रतरूपी मंत्रों से कर्मों का होम करते हैं, ध्यानरूपी अग्नि में कर्मरूपी ईंधन को देते हैं, षट् आवश्यक क्रियाओं में सदा तत्पर रहते हैं, तपरूपी धन जिनका सच्चा धन है, पुण्य कर्मों में कुशल हैं, अठारह हजार शीलों की चुनरिया जिनका वस्त्र है, मूल व उत्तर-गुण जिनके पास शस्त्र हैं, सूर्य और चन्द्र का तेज भी जिनके सामने लज्जित हो रहा है, मोक्षमंदिर के द्वार को खोलने में शूर हैं, ऐसे वे तपोधन मुझ पर प्रसन्न होवें।

गुरवः पान्तु नो नित्यं ज्ञानदर्शन नायकाः।
चारित्रार्णव गम्भीरा, मोक्षमार्गोपदेशकाः।। (5)

भावार्थ-सम्यक्ज्ञान व दर्शन के स्वामी, चारित्र पालन में समुद्रवत् गंभीर,

मोक्षमार्गोपदेशक आचार्यगुरुदेव हमारी रक्षा करें।

प्राज्ञः प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदयः प्रव्यक्तलोकस्थितिः।
प्रास्ताशः प्रतिभापरः प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तरः।।
प्रायः प्रश्नसहः प्रभुः परमनो हारी परानिन्दया।
ब्रूयाद्धर्मकथां गणी गुणनिधिः प्रस्पष्ट मिष्टाक्षरः।। (6)

भावार्थ-विद्वान्, समस्त शास्त्रों के मर्मज्ञ, लोकज्ञ, निस्पृह, प्रतिभावान/समय सूचकता में पारंगत, समभावी, प्रश्नों के पूर्व उत्तरज्ञाता, बहु-प्रश्नों को सहने में समर्थ, दूसरों के मन को हरने वाले/मनोज्ञ, पर-निन्दा से रहित, मधुर व स्पष्ट वक्ता, गुण निधि ऐसे आचार्य परमेष्ठी होते हैं।

श्रुतमविकलं शुद्धा वृत्तिः परप्रतिबोधने।
परणतिरूरूद्योगो मार्ग प्रवर्तन सद्विधौ।।
बुधनुतिरनुत्सेको, लोकज्ञता मदुताऽस्पृहा।
यतिपतिगुणा यस्मिन्नन्ये च सोऽस्तु गुरुः सताम्।। (7)

भावार्थ-पूर्णज्ञान, शुद्ध आचरण, परोपदेशक, भव्यों को समीचीन पथ में लगाना, विद्वन्मन्य, विनयवान्, मार्दवता, लोकज्ञता, निस्पृहता गुण जिनमें हैं वे मुनियों के स्वामी ही सज्जनों के गुरु आचार्य हो सकते हैं, दूसरे अन्य कोई नहीं।

तरण तारण श्रमण का स्वरूप

उवरदपावो पुरिसो समभावो धम्मिगेसु सव्वेसु।
गुणसमिदिदोवसेवी हवदि स भागी सुमग्गस।। (259) प्र.सा.

That man, who has refrained from sin, who entertains an attitude of equality towards all religious peopule and who maintains a band of virtues, joins the excellent path of liberation.

(स पुरिसो) वह पुरुष (सुमग्गस्स भारी) मोक्षमार्ग का पात्र (हवदि) होता है जो (उपरदपावो) सर्वविषय कषाय रूप पापों से रहित है (सव्वेसु धम्मिगेसु समभावो) धर्मात्माओं में समान भाव का धारी है तथा (गुण समिदिदोवसेवी) गुणों के समूहों को रखने वाला है। जो पुरुष सर्व पापों से रहित है, सर्व धर्मात्माओं में समान दृष्टि रखने वाला है तथा गुण समुदाय का सेवने वाला है और आप स्वयं मोक्षमार्गी होकर दूसरों के लिए पुण्य की प्राप्ति का कारण है, ऐसा ही महात्मा सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की

एकता रूप निश्चय मोक्षमार्ग का पात्र होता है।

समीक्षा-आचार्य देव ने यहाँ पर दीपक के समान स्वपर प्रकाशक, नौका के समान तरण-तारण, स्वोपकारक श्रमण का वर्णन किया है। जैसे दीपक स्वयं प्रकाशित होता है तब दूसरों को स्वयं प्रकाश मिलता है। वैसे ही जो आध्यात्मिक ज्योति से स्वयं प्रकाशमान होता है तब उनसे दूसरों को भी प्रकाश प्राप्त होता है। इसलिए महात्मा बुद्ध ने कहा था-

''**आददीव भवो परदीव भवो**'' अर्थात् स्वयं दीपक के समान प्रकाशमान बनो और दूसरों को प्रकाश दो। इसी प्रकार कुंदकुंद देव ने भी कहा है-''आदहिदं कादव्वं जदिसक्कदि परहिदं कादव्वं।'' अर्थात् आत्महित करना चाहिए यथासंभव हो तो पर का भी हित करना चाहिए। ऐसे जो महान् आत्मा होते हैं उनसे स्व-पर उपकार स्वाभाविक रूप से हो जाता है। ऐसे महापुरुषों का आकार, आचार, विचार स्वयंमेव एक खुला ग्रंथ होता है जिससे निरक्षर जीव भी अध्ययन कर सकता है। पूज्यपाद स्वामी ने सर्वार्थसिद्धि के प्रथम चरण में भी कहा है-

कश्चिद्भव्यः प्रत्यासन्ननिष्ठः प्रज्ञावान् स्वहितमुपलिप्सुर्विविक्ते परमरम्ये भव्यसत्त्व-विश्रामास्पदे क्वचिदाश्रमपदे मुनिपरिषन्मध्ये संनिषण्णं मूर्त्तमिव मोक्षमार्गमवाग्विसर्गं वपुषा निरूपयन्तं युक्त्यागमकुशलं परहितप्रतिपादनैककार्यमार्यनिषेव्यं निर्ग्रन्थाचार्यवर्यमुपसद्य सविनयं परिपृच्छति स्म। भगवन् किं नु खलु आत्मने हितं स्यादिति स आह मोक्ष इति। स एव पुनः प्रत्याह किंस्वरूपोऽसौ मोक्षः कश्चास्य प्राप्त्युपाय इति। आचार्य आहनिरवशेष-निराकृतकर्ममलकलङ्कस्याशरीरस्यात्मनोऽचिन्त्य स्वाभाविकज्ञानादिगुणमव्याबाधसुख-मात्यन्तिकमवस्थान्तरं मोक्ष इति।

अपने हित को चाहने वाला कोई एक बुद्धिमान निकट भव्य था। वह अत्यंत रमणीय भव्य जीवों के विश्राम के योग्य किसी एकांत आश्रम में गया। वहाँ उसने मुनियों की सभा में बैठे हुए वचन बोले बिना ही मात्र अपने शरीर की आकृति से मानो मूर्तिमान् मोक्षमार्ग का निरूपण करने वाले, युक्ति तथा आगम में कुशल, दूसरे जीवों के हित का मुख्य रूप से प्रतिपादन करने वाले और आर्य पुरुषों के द्वारा सेवनीय प्रधान निर्ग्रंथ आचार्य के पास जाकर विनय के साथ पूछा-'भगवन्! आत्मा का हित क्या है?' आचार्य ने उत्तर दिया-'आत्मा का हित मोक्ष है।' भव्य ने फिर पूछा-'मोक्ष का क्या स्वरूप है और उसकी प्राप्ति का उपाय क्या है?' 'आचार्य ने कहा कि-जब

आत्मा भावकर्म, द्रव्यकर्म रूप मलकलंक और शरीर को अपने से सर्वथा जुदा कर देता है तब उसको जो अचिन्त्य स्वाभाविक ज्ञानादि गुणरूप और अव्याबाध सुखरूप सर्वथा विलक्षण अवस्था उत्पन्न होती है उसे मोक्ष कहते है।'

गु अन्धकारस्तु 'रु' तस्य निरोधकम्।

अन्धकारः निरोधत्वात् गुरुः इत्यभिधियते।। (5)

गुरु = गु = अंधकार, रू = प्रकाश। जो अज्ञानरूपी अंधकार को हटाकर प्रकाश में ला दे वही तो गुरु है। वही तारण-तरण है। अपने आप भी तिरते हैं, दूसरों को भी तिराते हैं। गुरु गुणों से भारी यानि जिस में गुण भरे हो उसे गुरु कहते हैं। जो गुणों से खाली है वह गुरु नहीं है।

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूं पाय।

बलिहारी गुरु आपकी गोविन्द दियो बताय।। (6)

गुरु की महिमा तो भगवान् से भी अधिक है। जिनवाणी, भगवान् की मूर्ति ये तो मूक है, बोलने वाली नहीं परन्तु गुरु तो रास्ता दिखाने वाले हैं। इस अपेक्षा से गुरु को सर्वश्रेष्ठ कहा है। पशुओं के गुरु नहीं होते तभी तो वह उन्नति नहीं कर सकते हैं। मुक्ता, मणि, चंदन से भी अधिक महत्व है गुरुओं का। इसलिए सच्चे गुरु को भागचंद कवि ने तरण-तारण कहा है। यथा-

ऐसे साधु सुगुरु कब मिलि हैं।

आप तरे और पर को तारै निस्पृही निर्मल हैं।।

ऐसे तारण तरण साधु के लिए संपूर्ण विश्व अपने परिवार के समान है। कहा है **''उदार पुरुषाणां तु वसुधैव स्व कुटुम्बकम्''** वे स्वआत्म कल्याण करते हैं और दूसरों के आत्म कल्याण के लिए मनसा-वचसा-कर्मणा से तत्पर रहते हैं। संसार के मोही रागी द्वेषी जीव के दुःख को देखकर भावना भाते हैं और उपदेश देते हैं। इसे ही आगम में अपाय विचय एवं विपाक विचय धर्मध्यान कहा है। दुःखी जीवों के दुःख को देखकर एवं उनकी परिस्थिति को देखकर उनके योग्य उपदेशामृत पान कराते हैं। ऐसे महापुरुष भव्यों को उपदेश देते हैं-

यद्यपि कदाचिदस्मिन् विपाकमधुरं तदात्वकटु किंचित्।

त्वं तस्मान्मा भैषीर्यथातुरो भेषजादुग्रात्।। (3)

यद्यपि इस (आत्मानुशासन) में प्रतिपादित किया जाने वाला सम्यग्दर्शनादि का

उपदेश कदाचित् सुनने में अथवा आचरण के समय में थोड़ा-सा कडुवा (दुःखदायक) प्रतीत हो सकता है तो भी वह परिणाम में मधुर (हितकारक) ही होगा। इसलिये हे आत्मन्! जिस प्रकार रोगी तिक्ष्ण (कड़वी) औषधि से नहीं डरता है उसी प्रकार तू भी उससे डरना नहीं।

विषयविषमाशनोत्थित - मोहज्वरजनिततीव्रतृष्णास्य।
निःशक्तिकस्य भवतः प्रायः पेयाद्युपक्रमः श्रेयान्।। (17)

विषयरूप विषम भोजन से उत्पन्न हुए मोहरूप ज्वर के निमित्त से जो तीव्र तृष्णा (विषयाकांक्षा और प्यास) से सहित है तथा जिसकी शक्ति उत्तरोत्तर क्षीण हो रही है ऐसे तेरे लिए प्रायः पेय (पीने के योग्य सुपाच्य फलों का रस आदि तथा अणुव्रत आदि) आदि की चिकित्सा अधिक श्रेष्ठ होगी।

जना घनाश्च वाचालाः सुलभाः स्युर्वृथोत्थिताः।
दुर्लभा ह्यन्तरार्द्रास्ते जगदभ्युज्जिहीर्षवः।। (4)

जिनका उत्थान (उत्पत्ति और प्रयत्न) व्यर्थ है ऐसे वाचाल मनुष्य और मेघ दोनों ही सरलता से प्राप्त होते हैं किन्तु जो भीतर से आर्द्र (दयालु और जल से पूर्ण) होकर जगत् का उद्धार करना चाहते हैं ऐसे वे मनुष्य और मेघ दोनों ही दुर्लभ हैं।

लोकद्वयहितं वक्तुं श्रोतुं च सुलभाः पुरा।
दुर्लभाः कर्तुमद्यत्वे वक्तुं श्रोतुं च दुर्लभाः।। (143)

पूर्व काल में जिस धर्म के आचरण से इस लोक और परलोक दोनों ही लोकों में हित होता है उस धर्म का व्याख्यान करने के लिए तथा उसे सुनने के लिए भी बहुत से जन सरलता से उपलब्ध होते थे परन्तु तद्नुकूल आचरण करने के लिए उस समय भी बहुत जन दुर्लभ ही थे। किन्तु वर्तमान में तो उक्त धर्म का व्याख्यान करने के लिए और सुनने के लिए भी मनुष्य दुर्लभ है, फिर उसका आचरण करने वाले तो दूर ही रहे।

गुणागुणविवेकभिर्विहितमप्यलं दूषणं।
भवेत् सदुपदेशवन्मतिमतामतिप्रीतये।।
कृतं किमपि धाष्ट्र्यतः स्तवनमप्यतीर्थोषितैः।
न तोषयति तन्मनांसि खलु कष्टमज्ञानता।। (144)

जो गुण और दोष का विचार करने वाले सज्जन हैं वे यदि कदाचित् किसी दोष

को भी अतिशय प्रकट करते हैं तो वह बुद्धिमान मनुष्यों के लिए उत्तम उपदेश के समान अत्यंत प्रीति का कारण होता है। परन्तु जो आगमज्ञान से रहित है ऐसे अविवेकी जनों के द्वारा यदि धृष्टता से कुछ प्रशंसा भी की जाती है तो वह उन बुद्धिमान मनुष्यों के मन को संतुष्ट नहीं करती है। निश्चय से वह अज्ञानता ही दुःखदायक है।

दोषान् कांश्चन् तान् प्रवर्तकतया प्रच्छाद्य गच्छत्ययं।
सार्धं तैः सहसा म्रियेद्यदि गुरूः पश्चात्करोत्येष किम्।।
तस्मान्मे न गुरू गुरूर्गुरूतरान् कृत्वा लघूंश्च स्फुटं।
ब्रूते यः सततं समीक्ष्य निपुणंसोऽयं खलः सद्गुरूः।। (41)

यदि यह गुरु शिष्य के उन किन्हीं दोषों की प्रवृत्ति कराने की इच्छा से अथवा अज्ञानता से आच्छादित करके प्रकाशित न करके चलता है और इस बीच में यदि वह शिष्य उक्त दोषों के साथ मरण को प्राप्त हो जाता है तो फिर यह गुरु पीछे क्या कर सकता है? कुछ भी उसका भला नहीं कर सकता है। ऐसी स्थिति में वह शिष्य विचार करता है कि मेरे दोषों को आच्छादित करने वाला वह गुरु वास्तव में मेरा गुरु (हितैषी आचार्य) नहीं है किन्तु जो **दुष्ट मेरे क्षुद्र भी दोषों को निरंतर सूक्ष्मता से देख करके उन्हें अतिशय महान् बना करके स्पष्टता से कहता है वह यह दुष्ट ही मेरा समीचीन गुरु है।**

विकाशयन्ति भव्यस्य मनोमुकुलमंशवः।
रवेरिवारविन्दस्य कठोराश्च गुरूक्तयः।। (142)

कठोर भी गुरु के वचन भव्य जीव के मन को इस प्रकार से प्रफुल्लित (आनंदित) करते हैं जिस प्रकार कि सूर्य की कठोर (संतापजनक) भी किरणें कमल की कली को प्रफुल्लित किया करती हैं।

भगवती आराधना में शिवकोटि आचार्य ने दूसरों के लिए **हितकर परन्तु कटु शब्द बोलने वाले को भी श्रेष्ठ कहा है। जो परोपकार न करके दूसरों की उपेक्षा करता है ऐसे श्रमण को हेय बताया है। यथा-**

पत्थं हिदयाणिट्ठं पि भण्णमाणस्स सगणवासिस्स।
कडुगं व ओसहं तं महुरविवायं हवइ तस्स।। (359)

अपने गण के वासी साधु को हितकारी किन्तु हृदय को अनिष्ट भी लगने

वाले वचन बोलना चाहिए, क्योंकि वे वचन कडुवी औषधि की तरह उसके लिए मधुर फलदायक होते हैं। दूसरे को अनिष्ट वचन बोलने से हमारा अपना क्या प्रयोजन है, क्या वह स्वयं नहीं जानता? ऐसा मान उसकी उपेक्षा नहीं करना चाहिए। परोपकार करना ही चाहिए। जैसे तीर्थंकर शिष्यजनों के संबोधन के लिए ही विहार करते हैं। महत्ता नाम इसी का है कि परोपकार करने में तत्पर रहना।

क्षुद्राः संति सहस्त्रशः स्वभरणव्यापारमात्रोद्यताः।
स्वार्थो यस्य परार्थ एव स पुमानेकः सतामग्रणी।।
दुष्पूरोदरपूरणाय पिबति स्त्रोतः पतिं वाडवो।
जीमूतस्तु निदाघसंभृतजगत्संताप विच्छित्तये।। (359)

अपने ही भरण-पोषण में लगे रहने वाले क्षुद्रजन तो हजारों हैं किन्तु परोपकार ही जिसका स्वार्थ है ऐसा पुरुष सज्जनों में अग्रणी विरल ही होता है। बड़वानल अपना कभी न भरने वाला पेट भरने के लिए समुद्र का जल पीता है किन्तु मेघ ग्रीष्म से संतप्त जगत् के संताप को दूर करने के लिए समुद्र का जल पीता है।

पत्थं हिदयाणिट्ठं पि भण्णमाणं णरेण धेत्तव्वं।
पेल्लेदूण वि छूढं बालस्स घदं व तं खु हिदं।। (360)

हृदय को अनिष्ट भी वचन गुरु के द्वारा कहे जाने पर मनुष्य को पथ्य रूप से ग्रहण करना चाहिए। जैसे बच्चे को जबरदस्ती मुँह खोलकर पिलाया गया घी हितकारी होता है उसी तरह वह वचन भी हितकारी होता है।

अनगार धर्मामृत में भी उपरोक्त रहस्य का ही प्रतिपादन निम्न प्रकार से किया है-

विधिवद्धर्मसर्वस्वं यो बुद्धवा शक्तिश्चरन्।
प्रवक्ति कृपयाऽन्येषां श्रेयः श्रेयोऽर्थिनां हि सः।। (10)

जो विधिपूर्वक व्यवहार और निश्चय रत्नत्रयात्मक संपूर्ण धर्म को परमागम से और गुरु परंपरा से जानकर या रत्नत्रय से समाविष्ट आत्मा को स्वसंवेदन से जानकर शक्ति के अनुसार उसका पालन करते हुए लाभ, पूजा, ख्याति की अपेक्षा न करके कृपाभाव से दूसरों को उसका उपदेश करते हैं, अपने परम कल्याण के इच्छुक जनों को उन्हीं की सेवा करनी चाहिए, उन्हीं से धर्म श्रवण करना चाहिए।

स्वार्थैकमतयो भान्तु मा भान्तु घटदीपवत्।
परार्थे स्वार्थमतयो ब्रह्मवद् भान्त्वहर्दिवम्।। (11)

जिनकी मति परार्थ में न होकर केवल स्वार्थ में ही रहती है वे घट में रखे दीपक की तरह लोक में चमके या न चमके, उसमें हमें कोई रूचि नहीं है किन्तु जो स्वार्थ की तरह परार्थ में भी तत्पर रहते हैं वे ब्रह्म की तरह दिन-रात प्रकाशमान रहें।

स्वदुःखनिर्घृणारम्भाः परदुःखेषु दुःखिताः।
निर्व्यपेक्षं परार्थेषु बद्धकक्षा मुमुक्षवः।।

''मुमुक्षुजन अपने दुःख को दूर करने के लिए प्रयत्न करना ही उचित नहीं मानते तथा परदुःख से दुःखी होकर बिना किसी अपेक्षा के परोपकार के लिए सदा तत्पर रहते हैं।''

आदहिदं कादव्वं जइ सक्कइ परहिदं च कादव्वं।
आदहिदपरहिदादो आदहिदं सुट्ठु कादव्वं।।

अपना हित करना चाहिए, यदि शक्य हो तो परहित करना किन्तु आत्महित और परहित में से आत्महित ही सम्यक् रूप से करना चाहिए।

परोपकृतिमुत्सृज्य स्वोपकारपरो भव।
उपकुर्वन् परस्याज्ञो दृश्यमानस्य लोकवत्।।

परोपकार को छोड़कर स्वोपकार में तत्पर रहो। लोक के समान दृश्यमान परपदार्थों का उपकार करने वाला मूढ़ होता है।' जैन श्वेताम्बर ग्रंथ दशवैकालिक में भी कहा है कि-

निक्खम्ममाणाए बुद्धवयणे निच्चं चित्तसमाहिओ हवेज्जा।
इत्थीण वसं न यावि गच्छे वंतं नो पडियायई जे स भिक्खू।। (1)

जो तीर्थंकर के उपदेश से निष्क्रमण कर (प्रव्रज्या ले) निर्ग्रंथ प्रवचन में सदा समाहित-चित्त होता है, जो स्त्रियों के अधीन नहीं होता, जो वमे हुए को वापस नहीं पीता (त्यक्त भोगों का पुनः सेवन नहीं करता)-वह भिक्षु है।

रोइय नायपुत्तवयणे अत्तसमे मन्नेज्ज छप्पि काए।
पंच य फासे महव्वयाइं पंचासवसंवरे जे स भिक्खू।। (5)

जो ज्ञातपुत्र के वचन में श्रद्धा रखकर छहों कायों (सभी जीवों) को आत्मसम

मानता है, जो पाँच महाव्रतों का पालन करता है, जो पाँच आस्रवों का संवरण करता है वह-भिक्षु है।

न य वुग्गहियं कहं कहेज्जा न य कुप्पे निहुइंदिए पसंते।
संजमधुवजोगजुत्ते उवसंते अविहेऽए जे स भिक्खु।। (10)

जो कलहकारी कथा नहीं करता, जो कोप नहीं करता, जिसकी इन्द्रियाँ अनुद्धत हैं, जो प्रशांत है, जो संयम में ध्रुवयोगी है, जो उपशांत है, जो दूसरों को तिरस्कृत नहीं करता-वह भिक्षु है।

न परं वएज्जासि अयं कुसीले जेणऽन्नो कुप्पेज्ज न तं वएज्जा।
जाणिय पत्तेयं पुण्णपावं अत्ताणं न समुक्कसे जे स भिक्खू।। (18)

प्रत्येक व्यक्ति के पुण्य-पाप पृथक्-पृथक् होते हैं-ऐसा जानकर जो दूसरे को यह कुशील (दुराचारी) है ऐसा नहीं कहता, जिससे दूसरा कूपित हो ऐसी बात नहीं कहता, जो अपनी विशेषता पर उत्कर्ष नहीं लाता वह भिक्षु है।

पवेयए अज्जपयं महामुणी धम्मे ठिओ ठावयई परं पि।
निक्खम्म वज्जेज्ज कुसीललिंगं न यावि हस्सक्हए जे स भिक्खू।।(20)

जो महामुनि आर्यपद (धर्मपद) का उपदेश करता है, जो स्वयं धर्म में स्थित होकर दूसरे को भी धर्म में स्थित करता है, जो प्रव्रजित हो कुशील-लिंग का वर्जन नहीं करता है, जो दूसरों को हँसाने के लिए कुतूहल पूर्ण चेष्टा नहीं करता-वह भिक्षु है।

जीवन तेरी अमृतधारा!

(चाल : गंगा तेरा पानी अमृत.....)

जीवन! तेरी अमृत धारा, अनादि से बहती जायऽऽ
निगोद से लेकर सिद्ध तक, तेरी धारा बहती जायऽऽ...(ध्रुव)...

द्रव्य व भाव प्राणमय होता है तेरा स्वरूपऽऽ
इन्द्रिय बल आयु श्वासौच्छ्वास तेरे द्रव्य रूपऽऽ
चेतना तेरा भावरूप जो अनादि अनंत होयेऽऽ...जीवन...(1)...

अज्ञानी मोही भौतिकवादी, न जानते भावरूप/(भावप्राण)ऽऽ
इन्द्रिय बल आयु श्वासोच्छ्वास ही, मानते जीवन रूपऽऽ

चैतन्य प्राण को नहीं जानते, जो है अनुभवगम्यऽऽ...जीवन...(2)...

जन्म-मरण व रोग-शोक को ही, मानते जीवन पूर्णऽऽ
आयुकर्म रूपी द्रव्य प्राण को ही, मानते जीवन पूर्णऽऽ
भुज्यमान आयु के अनुसार ही करते जीवन वर्णन/(यापन)ऽऽ...जीवन...(3)...

खाना-पीना-सोना-जागना, भोगोपभोग ही कामऽऽ
अर्थकाम ख्याति पूजा लाभ ही, जिसके संपूर्ण कामऽऽ
उनका जीवन तो (पानी) बुलबुले सम, होता सार शून्यऽऽ...जीवन...(4)...

तेरे दोनों स्वरूप को जो जाने/(माने), वे होते सम्यग्दृष्टिऽऽ
शुद्ध चैतन्य भाव प्राण प्राप्ति हेतु, करते आत्मविशुद्धिऽऽ
शुक्लध्यान से कर्मनाश कर 'कनक' चाहे चैतन्य (प्राण) प्राप्तिऽऽ...जीवन...(5)...

सीपुर, दिनांक 28.12.2016, रात्रि 10.57 व 12.06

संदर्भ-

जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेह परिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई।। (2)

Jiva is characterised by upayoga, is formless and an agent has the same extent as its own body, is the enjoyer (of the fruits of Karma), exists in Samsara, is Siddha and has a chacteristics up word motion.

जो जीता है, उपयोगमय है, अमूर्त है, कर्त्ता है, निज शरीर के बराबर है, भोक्ता है, संसार में स्थित है, सिद्ध है और स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करने वाला है, वह जीव है।

छहों द्रव्यों में से जीव द्रव्य सर्वश्रेष्ठ एवं उपादेय द्रव्य होने के कारण तथा प्रथम गाथा में जीव द्रव्य का प्रथम निर्देश होने से इस दूसरी गाथा में आचार्यश्री ने जीव द्रव्य के नौ विशेष गुणों के नाम निर्देशपूर्वक नौ अधिकारों का संक्षेप में दिग्दर्शन किया है। स्वयं आचार्यश्री ने इसी ग्रंथ में नौ अधिकारों का विशेष वर्णन अग्रिम गाथासूत्र में किया है इसलिए यहाँ केवल सामान्य जानकारी के लिए नौ अधिकारों का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार से कर रहे है-

1. **जीव**-जो शुद्ध निश्चयनय से चैतन्य रूप भाव प्राण से जीता है एवं व्यवहार से अशुद्ध जो द्रव्य प्राण एवं भाव प्राण से जीता है उसे जीव कहते हैं।

2. **उपयोगमय**-शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से संपूर्ण निर्मल केवलज्ञान एवं केवल दर्शन रूप उपयोग से रहित है एवं व्यवहार नय से क्षायोपशमिक ज्ञान एवं दर्शन से युक्त है उसे उपयोगमय कहते हैं।

3. **अमूर्तिक**-संसारी जीव व्यवहार नय से मूर्तिक कर्मों से युक्त होने के कारण मूर्तिक होते हुए भी निश्चयनय से जीव कर्म निरपेक्ष है इसलिए अमूर्तिक हैं।

4. **कर्त्ता**-शुद्ध नय से जीव, कर्म का कर्त्ता नहीं है तथापि व्यवहार नय से जीव योग एवम् उपयोग से कर्मों का आस्रव एवं बंध करता है इसलिए कर्त्ता भी है

5. **स्वदेह परिमाण**-निश्चयनय से जीव, लोकाकाश के बराबर असंख्यात प्रदेशी होते हुए भी शरीर नामकर्म के उदय से उत्पन्न संकोच तथा विस्तार के कारण जीव संसारी अवस्था में जिस शरीर को प्राप्त करता है उस शरीर के बराबर हो जाता है।

6. **भोक्ता**-शुद्ध निश्चयनय से जीव स्व अनंत सुख को भोगता है तथापि अशुद्ध नय से कर्म परतंत्र जीव, शुभ कर्म से उत्पन्न शुभ एवं अशुभ कर्म से उत्पन्न अशुभ कर्मों को भी भोगता है।

7. **संसार में स्थित**-यद्यपि जीव शुद्ध निश्चयनय से संसार से रहित है तथापि अशुद्धनय से द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भवरूपी पंचविध संसार में रहता है।

8. **सिद्ध**-यद्यपि जीव अनादि काल से कर्म से युक्त होने के कारण असिद्ध है तथापि शुद्ध निश्चयनय से कर्म से रहित होने के कारण सिद्ध है।

9. **स्वभाव से ऊर्ध्वमान करने वाला**-यद्यपि कर्म परतंत्र जीव संसार में ऊँचा, नीचा, सीधा, तिरछा गमन करता है तथापि निश्चयनय से स्वभाव रूप से इसमें ऊर्ध्वगमन शक्ति है इसलिए जीव मोक्षगमन के समय ऊर्ध्वगमन ही करता है।

उपर्युक्त गुणों से युक्त प्रत्येक जीव होता है। कुछ दार्शनिक उनमें से कुछ गुण को तो मानते हैं और कुछ गुणों को नहीं मानते जैसे-चार्वाक आदि भौतिक जड़वादी दार्शनिक चैतन्य से युक्त शाश्वतिक जीव द्रव्य को नहीं मानते हैं। नैयायिक दर्शन में मुक्त जीव को ज्ञान, दर्शन से रहित मानते हैं, भट्ट तथा चार्वाक दर्शन जीव को मूर्तिक ही मानते हैं। सांख्य दार्शनिक आत्मा (पुरुष) को कर्त्ता नहीं मानता है। नैयायिक,

मीमांसक और सांख्य दर्शन आत्मा को प्राप्त शरीर प्रमाण न मानकर आत्मा को हृदय कमल में स्थित बट बीज आदि के बराबर मानते हैं। बौद्ध दर्शन क्षणिकवादी होने के कारण इस दर्शन की अपेक्षा जीव स्व-पूर्वोपार्जित कर्म का भोक्ता है यह सिद्ध नहीं होता। सदाशिव मत वाले आत्मा को सदा सर्वदा मुक्त मानते हैं। भट्ट एवं चार्वाक दार्शनिक आत्मा को सिद्ध नहीं मानते हैं। उपर्युक्त दार्शनिक जीव को स्वाभाविक ऊर्ध्वगमन वाला नहीं मानते हैं। उपर्युक्त असम्यक् मतों को निरसन करने के लिए इस गाथा में जीव के उपरोक्त गुणों का वर्णन किया गया है।

जीव का स्वरूप

तिक्काले चदुपाणा इंदियबलमाउआणपाणो य।
व्यवहारा सो जीवो णिच्छयणयदो दु चेदण जस्स।। (3)

According to Vyavahara Naya, That is called Jiva, which is possessed of four Pranas viz, Indriya (th senss), Bal (Forc), Ayu (Life) And Ana-prana (respiration) in the three priods of time viz, the present, the past and the future and according to Nischaya Naya that which has consciousness is called Jiva.

तीन काल में इन्द्रिय, बल, आयु और आनपान इन चारों प्राणों को जो धारण करता है वह व्यवहार नय से जीव है और निश्चयनय से जिसके चेतना है, वह जीव है।

आचार्यश्री ने इस गाथा में व्यवहार नय से एवं निश्चयनय से जीव की परिभाषा दी है। संसारी जीव अनादिकाल से कर्म संतति की अपेक्षा कर्म से युक्त है। इसलिए कर्म परतंत्र जीव यथायोग्य कर्म के उदय से प्राप्त यथा योग्य द्रव्य प्राण एवं भाव प्राण से जीता है। इसलिए व्यवहार नय से चार द्रव्य प्राणों से और भाव प्राणों से जो जीता है, जीवेगा या पहले जीया है उसे जीव कहते हैं, अनुपचरित असद्भुत व्यवहार नय से द्रव्येन्द्रिय आदि द्रव्य प्राण है और भावेन्द्रिय आदि क्षायोपशमिक भाव प्राण अशुद्ध निश्चयनय से है तथा निश्चयनय से शुद्ध चैतन्य ज्ञान आदि शुद्ध भाव प्राण है।

प्रत्येक द्रव्य, 'पर' से उत्पन्न न होने वाला सत्तावान् होने से प्रत्येक द्रव्य अनादि अनिधन अर्थात् शाश्वतिक है। विज्ञान के अनुसार भी द्रव्य एवम् ऊर्जा कभी भी नष्ट नहीं होते हैं परन्तु परिवर्तित होते रहते हैं। इसलिए प्रत्येक जीव अनादि से हैं और अनंत तक रहेगा भले उसमें सतत परिवर्तन होता है।

अनंत वैभववान् हूँ अतः सांसारिक क्षुद्र वैभव से निस्पृह अनासक्त रहूँ

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छिप गया कोई रे.....)

अनंत वैभववान् हूँ अनंत है ज्ञान, अनंत सुख सम्पन्न हूँ अनंत वीर्यवान्।
क्षुद्र वैभव में मेरी अतः नहीं स्पृहा/(आसक्ति) सांसारिक उपलब्धियों में मेरी निस्पृहा।। (1)

सांसारिक सभी वैभव कर्म से उपज, कर्मजनित होने से होते हैं भौतिक।
अतएव वे सभी नहीं मेरे आत्म वैभव, अतः वे सभी नहीं मेरे आत्म स्वभाव।। (2)

जो न होते स्वभाव वे होते अस्थिर, कर्म उपज होने से वे होते अशुद्ध।
जिससे वे न होते शुद्ध-बुद्ध-आनंद, दुःख उत्पादक संक्लेश कारक द्वंद्व।। (3)

अनंत बार सांसारिक वैभव को भी भोगा, तथापिन तृप्त हुआ न अनंत सुख पाया।
सांसारिक वैभव हेतु मारा व मरा, मोह क्षोभ ईर्ष्या-तृष्णा से संतप्त रहा।। (4)

राजा महाराजा चक्री से देवेन्द्र तक, स्व-स्ववैभव से न पाये अनंत सुख।
अनंत सुख हेतु चक्री तक बनते साधु, कर्मनाश से बनते अनंत वैभव-प्रभु।। (5)

सांसारिक वैभव को स्व-मानना 'ममकार', उससे स्व को बड़ा मानना 'अहंकार'।
शुद्धात्मा वैभव को स्व मानना 'सम्यक्त्व', स्व-आत्म वैभव की प्राप्ति है 'मोक्ष'।। (6)

मोक्ष में होते हैं अनंत ज्ञान वैभव, शुद्ध-बुद्ध व आनंद-स्वभाव।
इसे ही प्राप्त करना मेरा परम ध्येय, 'कनक' अतः संसार में रहे निस्पृह।। (7)

सीपुर, दिनांक 29.12.2016, मध्याह्न 2.47

संदर्भ-

स्वर्ग का सुख भी दुःख रूप ही है

वासनामात्रमेवैतत्सुखं दुःखं च देहिनां।
तथा ह्युद्वेजयंत्येते भोगा रोगा इवापदि।। (6)

The experinces of preasures and rains of the Samsari jivas (unemancipated souls) are purely imaginary; for this reason the sense. Prduced pleasure give rise, like disease, to uneasiness

on the approach of trouble!

यह जो स्वर्ग में या संसार में इन्द्रिय जनित सुख है वह सुख नहीं है दुःख स्वरूप ही है। यह सुख केवल वासना मात्र है। परमार्थ से उपकार एवं अपकार से रहित देहादि उपेक्षणीय तत्त्व में यह मेरा उपकारी है ऐसा मान करके इष्ट मानना और यह पदार्थ अनुपकारी है इसलिये अनिष्ट मानना इस प्रकार के विभ्रम से उत्पन्न होने वाले संस्कार को वासना कहते हैं। इस इष्टानिष्ट अनुभव के अनंतर स्वयं में अभिमान का परिणाम उत्पन्न होता है यह सब वासना मात्र है, स्वाभाविक नहीं है। देह को आत्मा मानना अर्थात् देह में रहने वाला देही अर्थात् आत्मा को देह मानना यह बहिरात्म अर्थात् मिथ्यात्वपना है। यह इन्द्रिय जनित सुख केवल उद्वेग को, विक्षोभ को, अशांति को उत्पन्न करता है न कि सुख-शांति को देता है। जिसको लोक में सुख जनन कहते हैं या प्रतीति करते हैं वह इन्द्रिय जनित रमणीय भोग ज्वरादि व्याधि के समान रोग है। वह भोग सुख कठिनाई से दूर होने वाली विपत्ति है। इससे मन दुःखी संतापित हो जाता है। कहा भी है-

मुचांगं ग्लपयस्यलं क्षिप कुतोऽप्यक्षाश्च विद्भात्यदो।
दूरे धेहि न हृष्य एष किमभूरन्या न वेत्सि क्षणम्।
स्थेयं चेद्धि निरुद्धि गामिति तवोद्योगे द्विषः स्त्रीक्षिपं-
त्याश्लेषक्रमुकांगरागललितालापैर्विधित्सू रतिम्।।

भोग उद्वेग जनक हैं, इस विषय के स्पष्टीकरणार्थ टीकाकार द्वारा उद्धृत एक पद्य ऊपर दिया गया है। उसका भाव यह है कि पति-पत्नी परस्पर अपने सुख में रत थे कि इतने में अकस्मात् अर्थ संकटादि की कोई ऐसी भारी घटना घटी, जिससे पति चिन्तित होकर रति-सुख से कुछ उदास हो रहा था, तब पत्नी आलिंगन की इच्छा से अङ्गों को इधर-उधर चलाती हुई रागवश अनेक ललित वचनों से रति करना चाहती है। तब पति उससे कहता है कि तू अङ्गों को छोड़, क्योंकि तू आतापकारिणी है। तू हट जा इससे मेरी छाती उत्पीड़ित होती है। दूर चली जा, इससे मुझे हर्ष नहीं होता, तब पत्नी ताना मारती हुई कहती है कि क्या अन्य से प्रीति कर ली है। तब फिर पति कहता है कि तू समय को नहीं देखती है। यदि धैर्य है तो अपने उद्योग से इन्द्रियों को वश में रख, इस तरह कहता हुआ वह पत्नी को दूर फेंक देता है। मन के व्यथित होने पर भोग भी उद्वेग उत्पन्न कर देते हैं। और भी कहा है-

''रम्यं हर्म्य चन्दनं चंद्रपादा वेणुर्वीणा यौवनस्था युवत्यः।
नैते रम्याक्षुत्पिपासार्दितानां सर्वारम्भस्तंदुलाप्रस्थमूलाः।।''

जो मनुष्य भूख प्यास से पीड़ित है-दुःखी है-उन्हें सुंदर महल, चंदन-चंद्रमा की किरणें, वेणु-बीनबाजा और युवती-स्त्रियाँ रमणीय मालूम नहीं होते है क्योंकि जीवों के सभी आरंभ तंदुलप्रस्थ मूल होते है-घर में चावल विद्यमान है तो ये उपरोक्त सभी बातें सुंदर प्रतीत होती हैं अन्यथा नहीं। और भी कहा है-

आतपे धृतिमता सह बध्वा यामिनीविरहिणा विहगेन।
सेहिरे न किरण हिमरश्मेर्दुः खिते मनसि सर्व्वमसह्यम्।।

'जो पक्षी धूप में अपनी प्यारी प्रिया के साथ उड़ता फिरता था परन्तु उसे धूप का कष्ट मालूम नहीं होता था, रात्रि को जब उस पक्षी का अपनी प्राण प्यारी के साथ वियोग हो गया तब उसे चन्द्रमा की शीतल किरणें भी अच्छी नहीं लगती, क्योंकि मन के दुःखित होने पर सभी चीजें असह्य हो जाती हैं।'

इससे सिद्ध होता है कि इन्द्रिय जनित सुख वासना मात्र है। आत्मा का स्वाभाविक अनाकुल रूप सुख नहीं है, नहीं तो इस प्रकार लोक में सुखी दिखाई देने वाले भाव दुःख के लिए कारण बनते। इसी प्रकार संसार के लिए भी जान लेना चाहिए।

समीक्षा-जिस प्रकार खुजली के रोगी खुजली को खुजाते समय कुछ सुखाभास होता है परन्तु वह सुख वस्तुतः सुख नहीं है। जब खुजली असहनीय हो जाती है तब उसको वह खुजलाता है और खुजालने के बाद उसमें पीड़ा होती है और खुजली बढ़ जाती है। इसी प्रकार मोहकर्म के कारण जीव दुःखी होकर इन्द्रिय जनित सुख को भोगता है और वह जितना-जितना उस सुख को भोगता है उस संबंधी और भी तृष्णावान् होकर दुःखी हो जाता है। इतना ही नहीं, उस भोगासक्ति से वह और भी पाप बाँधकर आगामी दुःख को आमंत्रण देता है। कुंदकुंद देव ने प्रवचनसार में कहा भी है-

इन्द्रिय सुख को भोगने का कारण

मणुयासुरामरिंदा अहिदुदा इंदियेहिं सहजेहिं।
असहंता तं दुक्खं रमंति विसएसु रम्मेसु।। (63)

इसका विस्तार यह है कि जो मनुष्यादि जीव अमूर्त अतीन्द्रिय ज्ञान तथा सुख

के आस्वादन को नहीं अनुभव करते हुए मूर्तिक इन्द्रिय जनित ज्ञान तथा सुख के निमित्त पाँचों इन्द्रियों के भोगों में प्रीति करते हैं। जैसे गर्म लोहे का गोला चारों तरफ से पानी खींच लेता है उसी तरह पुनः-पुनः विषयों में तीव्र तृष्णा पैदा होती है। उस तृष्णा को न सह सकते हुए वे विषय भोगों का स्वाद लेते हैं, इसलिए ऐसा जाना जाता है कि पाँचों इन्द्रियों की तृष्णा रोग के समान है तथा उसका उपाय विषय भोग करना यह औषधि के समान हैं इसलिए संसारी जीवों को वास्तविक सच्चे सुख का लाभ नहीं होता है।

प्रत्येक जीव का स्वाभाविक स्वरूप सुख स्वरूप है, इसलिए प्रत्येक जीव सुख चाहता है, परन्तु अनादिकाल की परतंत्रता के कारण संसारी जीव सहज आत्मिक सुख को प्राप्त करने में असमर्थ है। उस कर्म परतंत्रता के कारण शारीरिक, मानसिक एवं इन्द्रियजनित दुःख होते हैं। उन दुःखों से पीड़ित होकर सुख की इच्छा से मोह से मोहित होकर इन्द्रियजनित सुख का भोग करते हैं। बिना दुःख कोई इन्द्रियजनित सुख को नहीं चाह सकता है। जिस प्रकार प्यासा व्यक्ति पानी को चाहता है, भूखा व्यक्ति भोजन चाहता है, सर्दी से पीड़ित व्यक्ति उष्ण वस्तु को चाहता है, रोग से संतप्त व्यक्ति औषधि को चाहता है, खुजली रोग से पीड़ित व्यक्ति खुजालता है उसी प्रकार संसारी जीव विभिन्न दुःखों से पीड़ित होकर उसकी तात्कालिक निवृत्ति के लिए इन्द्रियजनित सुख चाहता है परन्तु जिस प्रकार प्यासादि से रहित व्यक्ति पानी आदि को नहीं चाहता है उसी प्रकार इन्द्रियजनित दुःखों के बिना इन्द्रियजनित सुखों को नहीं चाह सकता है। यह क्रम स्वर्ग के देवों से स्पष्ट प्रतिभासित हो जाता है क्योंकि नीचे-नीचे स्वर्ग के देव इन्द्रियजनित दुःख से अधिक पीड़ित होने के कारण अधिक-अधिक भोग सेवन करते हैं और उत्तरोत्तर (ऊपर-ऊपर) के देव इन्द्रियजनित दुःख से कम पीड़ित होने के कारण इन्द्रियजनित सुख भोग कम सेवन करते हैं। जैसे सर्वार्थसिद्धि आदि के कुछ विशिष्ट देव प्रवीचार (मैथुन) ही नहीं करते हैं, क्योंकि उन्हें वेद कर्मजनित विशेष पीड़ा का अभाव है। गुणस्थान की अपेक्षा भी पहले-पहले गुणस्थानों में इन्द्रियजनित पीड़ा अधिक है और उत्तरोत्तर इन्द्रियजनित पीड़ा कम होती जाती है। जीव इन्द्रियजनित भोगों को क्यों भोगना चाहता है इसका आगमोक्त अनुभवपरक सुंदर वर्णन महाप्रज्ञ पं. आशाधर जी ने किया है-

अनाद्यविद्यादोषोत्थचतुः संज्ञाज्वरातुराः।

शश्वत्स्वज्ञानविमुखा सागारा विषयोन्मुखाः।। (2)

अनादिकालीन अविद्या रूपी दोष से उत्पन्न हुई चार संज्ञा रूपी ज्वर से पीड़ित, सदा आत्मज्ञान से विमुख और विषयों में उन्मुख गृहस्थ होते हैं।

अनाद्यविद्यानुस्यूता ग्रंथसंज्ञामपासितुम्।

अपारयन्तः सागाराः प्रायो विषयमूर्च्छिताः।। (3)

अनादि अविद्या के साथ बीज और अंकुर की तरह परंपरा से चली आ रही परिग्रह संज्ञा को छोड़ने में असमर्थ और प्रायः विषयों में मूर्च्छित सागर होते हैं।

ज्ञानीसङ्गतपोध्यानैरप्यसाध्यो रिपुः स्मरः।

देहात्मभेदज्ञानोत्थवैराग्येणैव साध्यते।। (32)

आत्मदर्शी ज्ञानी पुरुषों की संगति, तप और ध्यान से भी वश में न आने वाला यह शत्रु कामदेव शरीर और आत्मा के भेदज्ञान से उत्पन्न हुए वैराग्य से ही वश में आता है।

धन्यास्ते येऽत्यजन् राज्ये भेदज्ञानाय तादृशम्।

धिङ्मादृशकलत्रेच्छातंत्रगार्हस्थ्य दुःस्थितान्।।

भरत चक्रवर्ती आदि जिन पुरुषों ने भेदज्ञान के लिए ऐसे विशाल राज्य को छोड़ दिया, वे धन्य हैं। जिसमें स्त्री की इच्छा का ही प्राधान्य है उस गृहस्थाश्रम में दुःख पूर्ण जीवन बिताने वाले हमारे जैसे विषयी लोगों को धिक्कार है।

इतः शमश्री स्त्रीचेतः कर्षतो मां जयेन्नु का।

आ ज्ञातमुत्तरैवात्र जेत्री या मोहराट्चमूः।। (34)

इस ओर से प्रशम सुख रूप लक्ष्मी और दूसरे ओर से स्त्री मेरे चित्त को आकृष्ट करती है। इनमें से किसकी जीत होगी? अथवा मुझे निश्चय हो गया है कि इन दोनों में से स्त्री ही जीतेगी, जो मोह राजा की सेना है।

चित्रं पाणिगृहीतीयं कथं मां विण्वगाविशत्।

यत्पृथग्भावितात्माऽपि समवैम्यन्या पुनः।। (35)

आश्चर्य है कि यह पाणिगृहीती अर्थात् जिसका मैंने पाणिग्रहण किया है कैसे मुझमें चारों ओर से घुस गयी। क्योंकि मैं भिन्न हूँ और यह मुझसे भिन्न है इस प्रकार तत्त्व-ज्ञान से बारंबार विचार करने पर भी मैं फिर उसके साथ अपने को एकमेक कर लेता हूँ।

स्त्रीश्चित्त निवृत्तं चेन्ननु वित्तं किमीहसे।

मृतमण्डनकल्पो हि स्त्रीनिरीहे धनग्रहः।। (36)

हे चित्त! यदि तुम विवेक के बल से स्त्री से निवृत्त हो तो फिर धन की इच्छा क्यों करते हो? क्योंकि स्त्री के प्रति निस्पृह होने पर धन का अर्जन रक्षण आदि ऐसा ही है जैसे मुर्दे को सजाना।

जहाँ तक इन्द्रिय सुख है वहाँ तक दुःख है-

जेसिं विसयेसु रदी तेसिं दुःक्खं वियाण सब्भावं।

जदि तं ण हि सब्भावं वावारो णत्थि विसयत्थं।। (64)

कारण के बिना कार्य नहीं होता और जहाँ कार्य है वहाँ अवश्य कारण होगा ही। जिस प्रकार जहाँ अग्निजनित धुआँ है वहाँ अग्नि अवश्य होगी क्योंकि अग्नि के बिना धुआँ होना असंभव है इसी प्रकार जहाँ विषय संबंधी राग है, भोग है, वहाँ उस विषय संबंधी दुःख अवश्य ही होगा। जिस प्रकार एक व्यक्ति रुचिपूर्वक भोजन कर रहा है तो वह व्यक्ति शारीरिक रूप से या मानसिक रूप से भूखा होगा। इसी प्रकार कोई औषधि सेवन करता है तो वह किसी न किसी रोग से ग्रसित होगा। क्योंकि जीवों की प्रवृत्ति आवश्यकतानुसार ही होती है, अनावश्यक नहीं होती है। जिस प्रकार जिसके लिए धन की आवश्यकता होती है वह धन उपार्जन करता है परन्तु जिसको धन की आवश्यकता नहीं है वह न धन संचय करता है न उत्पादन करता है जैसे- निस्पृही (दिगम्बर संत)। परन्तु अज्ञानी, मोही, रागी जीव उस दुःख को ही सुख मान बैठता है एवं उसमें ही रमण करता है। कहा भी है-

न तदस्तीन्द्रियार्थेषु यत्क्षेमङ्करमात्मनः।

तथापि रमतेबालस्तत्रैवाज्ञान भावनात्।। (55) (समाधितंत्र पृ.नं.64)

तत्त्वदृष्टि से यदि विचार किया जाय तो ये पाँचों ही इन्द्रियों के विषय क्षणभंगुर हैं पराधीन हैं, विषम हैं, बंध के कारण हैं, दुःख स्वरूप हैं और बाधा सहित हैं-कोई भी इनमें आत्मा के लिए सुखकर नहीं फिर भी यह अज्ञानी जीव उन्हीं से प्रीति करता है, उन्हीं की सम्प्राप्ति में लगा रहता है और रात-दिन उन्हीं का राग अलापता है। यह सब अज्ञान भाव को उत्पन्न करने वाले मिथ्यात्व-संस्कार का ही माहात्म्य है।

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारेस्त्रिभिर्नरः।

आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्।। (22) पृ.149

हे कौंतेय! इस त्रिविध नरक द्वार से दूर रहने वाला मनुष्य आत्मा के कल्याण का आचरण करता है और इससे परम गति को पाता है।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।

आद्यन्तपन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः।। (22) (गीता पृ.68)

विषय-जनित भोग अवश्य दुःखों के कारण हैं। हे कौंतेय! वे आदि और अंत वाले हैं। बुद्धिमान मनुष्य उनमें नहीं फँसता।

अपि संकल्पिताः कामाः संभवन्ति यथा-यथा।

तथा-तथा मनुष्याणां तृष्णा विश्वं विसर्पति।।

ज्यों-ज्यों अभिलाषित भोग प्राप्त होते जाते हैं और उनमें सुख की कल्पना की जाती है त्यों-त्यों तृष्णा भी बढ़ती जाती है और उनसे सदा अतृप्ति ही बनी रहती है। कदाचित् यह कहा जाये कि भोगों के यथेष्ट भोग लेने पर मनुष्य की तृष्णा शांत हो जाएगी और तृष्णा-शांति से संतोष हो जायेगा सो यह भी संभव नहीं है, क्योंकि अंत समय में आसक्ति होने पर भी भोग नहीं छोड़े जा सकते। भले ही वे हमें स्वयं छोड़ दे। पर भोगों की वृद्धि में तृष्णा भी उतनी ही बढ़ती जाती है, फिर तृप्ति या संतोष नहीं होता। कहा भी है-

दहनस्तृणकाष्टसंचययैरपि तृष्यदुदधिर्नदीशतैः।

ननु कामसुखैः पुमानहो बलवत्ता खलु कापि कर्मणः।।

अग्नि में कितना ही तृण और काष्ठ क्यों न डाला जाय लेकिन तृप्ति नहीं होती, शायद वह तृप्त हो जाय, सैकड़ों नदियों से भी समुद्र की तृप्ति नहीं होती, यदि कदाचित् उसकी भी तृप्ति हो जाय, परन्तु भोगों से मनुष्य कभी तृप्त नहीं हो सकता। कर्म बड़ा ही बलवान् है और कहा भी है-

तदात्व सुखसंज्ञेषु भावेष्वज्ञोऽनुरज्यते।

हितमेवानुरूध्यंते प्रपरीक्ष्य परीक्षकाः।।

अतएव जो मनुष्य मूढ़ है-हित अहित के विवेक से शून्य हैं-वे भोग भोगते समय उन्हें सुखकारी समझ भोगों में अनुराग करते हैं-किन्तु जो मनुष्य परीक्षा प्रधानी हैं-हेयोपादेय के विवेक से जिनका चित्त निर्मल है, वे इन दुःखकारी क्षणिक विनाशी भोगों की ओर न झुककर हितकर मार्ग का ही अनुसरण करते हैं।

एहिकं यत्सुखं नाम सर्व वैषयिकं स्मृतम्।

न तत्सुखं सुखाभासं किन्तु दुःखमसंशयम्।। (पचा. पृ.333 श्लोक 334)

सम्यग्दृष्टि विचार करता है कि जो सांसारिक (इस लोक संबंधी) सुख है वह सब पंचेन्द्रिय संबंधी विषयों से उत्पन्न होने वाला है। वास्तव में वह सुख नहीं है, किन्तु सुख का आभास मात्र है, निश्चय से वह दुःख ही है।

तस्माद्धेयं सुखामासं दुःखं दुःखफलं यतः।

हेयं तत्कर्म यद्धेतुस्तस्यानिष्टस्य सर्वतः।। (239)

इसलिये वह सुखाभ्यास छोड़ने योग्य है। वह स्वयं दुःख स्वरूप है और दुःख रूप फल को देने वाला है। उस सदा अनिष्ट करने वाला वैषयिक सुख का कारण कर्म है, इसलिये इस कर्म का ही नाश करना चाहिए।

तत्सवं सर्वतः कर्म पौद्गलिकं तदष्टधा।

बैपरीत्यात्फलंतस्य सर्वदुःखंविपच्यतः।। (240)

वह संपूर्ण पौद्गलिक कर्म सर्वदा आठ प्रकार का है, उसी कर्म का उल्टा विपाक होने से सभी फल दुःख रूप ही होता है।

नैवं यतः सुखं नैतत् तत्सुखं यत्र नाऽसुखम्।

स धर्मो यत्र नाधर्मस्तच्छुमं यत्र नाऽशुभम्।। (244)

शंकाकार का उपर्युक्त कहना ठीक नहीं है। क्योंकि जिसको वह सुख समझता है वह सुख नहीं है। वास्तव में सुख वही है जहाँ पर कभी थोड़ा भी दुःख नहीं है, वही धर्म है, जहाँ पर अधर्म का क्लेश नहीं है और वही शुभ है जहाँ पर अशुभ नहीं है।

इदमस्ति पराधीनं सुखं बाधापुरस्सरम्।

व्युच्छिन्नं बन्धहेतुश्च विषमं दुःखमर्थतः।। (245)

यह इन्द्रियों से होने वाला सुख पराधीन है, कर्म के परतंत्र है, बाधापूर्वक है, इसमें अनेक विघ्न आते हैं, बीच-बीच में इसमें दुःख होता जाता है, यह दुःख बंध का कारण है तथा विषम है। वास्तव में इन्द्रियों से होने वाला सुख-दुःख रूप ही है।

मोही स्वभाव को प्राप्त नहीं करता है

मोहेन संवृतं ज्ञानं स्वभावं लभते नहि।

मत्तः पुमान् पदार्थनां यथा मदनकोद्रवैः।। (7)

Deluded by infatuation the knowing being is unable to

acquire adequate knowledge of the nature of things, in the same way as a person who has lost his wits in coneguence of eating intoxicating is unable to know thow them properly!

''धातुनाम् अनेक अर्थत्वात्'' अर्थात् धातुओं के अनेक अर्थ होने के कारण यहाँ लभ धातु का अर्थ ज्ञान है। जब ज्ञान मोहनीय कर्म के विपाक से आविर्भूत हो जाता है तब वह ज्ञान वस्तु स्वरूप को यथार्थ प्रकाशन करने में असमर्थ हो जाता है। शुद्ध स्वरूप से ज्ञान कथंचित् आत्मा से अभिन्न है और वस्तु स्वरूप को यथार्थ से जानने के लिए पूर्ण समर्थ है परन्तु कर्म परवशता के कारण ज्ञान में/आत्मा में विकार उत्पन्न हो जाता है। कहा भी है-जिस प्रकार मल से आबद्ध मणि एक प्रकार का नहीं होता है, एक प्रकार का प्रकाश नहीं देता है उसी प्रकार कर्म से आबद्ध आत्मा भी एक प्रकार का नहीं होता है और एक प्रकार का नहीं जानता है।

निश्चय से मेरा आत्म-स्वरूप चैतन्य शक्ति लक्षण वाला है और वह निश्चय प्राण कदापि मेरे से भिन्न नहीं हो सकता है, इसीलिये मेरा मरण संभव ही नहीं है। इसीलिये कृष्ण सर्प आदि से मैं क्यों भयभीत बनूँ? वातादि दोष से उत्पन्न रोग मेरे में है ही नहीं है क्योंकि मैं अमूर्तिक हूँ और वातादि मूर्तिक है। इसलिये ज्वरादि विकार से मेरी व्यथा कैसे संभव है? बालादि अवस्था भी पौद्गलिक कर्म जनित है इसीलिये बालादि अवस्था से प्राप्त दुःख भी मेरा कैसे संभव है? तब मृत्यु-प्रभृति जो जीव की व्यावहारिक अवस्था देखी जाती है वह क्या है? इसका समाधान यह है कि-मृत्यु, व्याधि, बालादि है परन्तु मुझमें इसका होना अत्यंत असंभव है। भावक भव्य पुनः-पुनः स्वयं शंका समाधान करते हुए स्व-शुद्ध स्वरूप तथा कर्मजनित देहादि के स्वरूप को विचार करके स्व-स्वरूप को प्राप्त करने का एवं पर स्वरूप को त्याग करने की भावना भाता है और तदनुकूल पुरुषार्थ भी करता है।

समीक्षा-सम्यग्दर्शन होते ही जीव को स्व-पर की प्रतीति/श्रद्धा हो जाती है और ज्ञान भी भेद विज्ञान स्वरूप सम्यग्ज्ञान हो जाता है। उसे यह ज्ञान एवं भान हो जाता है कि मैं समस्त द्रव्य कर्म-भाव कर्म-नो कर्म से रहित सच्चिदानंद स्वरूप अविनाशी परमात्मा हूँ परन्तु कर्म वशात् जन्म, मृत्यु, रोग, व्याधि बालादि अवस्थाएँ होती है इसीलिये वह इन कर्मजनित अवस्थाओं से श्रद्धा रूप से अप्रभावित होता है।

अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूवी।
णवि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णं परमाणुमित्तंपि।।

ज्ञानी जीव का ऐसा विचार होता है कि मैं एकांकी हूँ शुद्ध हूँ अर्थात् परद्रव्य के संबंध से सर्वथा रहित हूँ, दर्शन ज्ञानमयी हूँ और सदा अरूपी हूँ अतः इन सब बाह्य पर-द्रव्यों में मेरा परमाणु मात्र भी नहीं है।

अरसमरूपमगंध अव्वत्तं चेदणागुणमसहं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं।।

शुद्ध जीव तो ऐसा है कि जिस में न रस है, न रूप है, न गंध है और न इन्द्रियों के गोचर ही है। केवल चेतना गुण वाला है शब्द रूप भी नहीं है, जिसका किसी भी चिह्न द्वारा ग्रहण नहीं हो सकता और जिसका कोई निश्चित आकार भी नहीं है।

णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो जो भावो।
एवं भणंति सुद्धा णादा जो सो दु सो चेव।।

जो प्रमत्त और अप्रमत्त इन दोनों अवस्थाओं से ऊपर उठकर केवल ज्ञायक स्वभाव को ग्रहण किये हुए हैं वह शुद्धात्मा है ऐसा शुद्धनय के जानने वाले महापुरुष कहते हैं।

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससुत्तमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं।।

जो आत्मा को अबद्ध स्पृष्ट, अनन्य, अविशेष आदि से अनुभव करता है वह द्रव्यश्रुत और भावश्रुतमय द्वादशांग रूप पूर्व जिनशासन कहा है।

निस्पृह भावना

भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान्मया सर्वेऽपि पुद्गलाः।
उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य, मम विज्ञस्य का स्पृहा।। (30)

Again and again, through delusions, have the bodies of matter been enjoyed and thrown off by me; how can I long for them now that I am endowed with true wisdom; for no one like to eat the leavings.

मोह से अविद्या के वश से अनादिकाल से कर्मादि भाव को प्राप्त किये हुए मैंने संसारावस्था में समस्त पुद्गल को पुनः-पुनः ग्रहण करके, अनुभव करके पश्चात् नीरस करके उसे उच्छिष्ट के समान (झूठन) त्याग कर दिया। जिस प्रकार भोजन, गंध, मलादि को स्वयं भोग करके सेवन करके त्याग करने के बाद उसे पुनः स्वीकार नहीं किया जाता, उसी प्रकार मैं अभी विज्ञ होकर तत्त्वज्ञान में परिणत होकर किस प्रकार

सांसारिक पौद्गलिक द्रव्य में स्पृहा करूँगा? अर्थात् उसकी कामना करूँगा। अर्थात् किसी भी प्रकार से मैं सांसारिक पुद्गल आदि जनित वस्तु में अभिलाषा नहीं करूँगा। हे वत्स! जब तू मोक्षार्थी हो तब तुम्हें निर्ममत्व की ही भावना भानी चाहिए।

समीक्षा-यह जीव अनादिकाल से द्रव्यादि पंच परिवर्तन रूपी संसार में भ्रमण करता हुआ विश्व के समस्त पुद्गलों को अनंत बार भोजन, पानी, वस्त्र, भोगोपभोग की वस्तु, वायु, शरीर, वचन, मन कर्मादि रूप से ग्रहण किया और त्याग किया। इसी प्रकार क्षेत्र (आकाश-प्रदेश) काल (उत्सर्पणी-अवसर्पणी काल) भव (नरकादि भव) भाव (विभिन्न संकल्प-विकल्प) को भी प्राप्त किया और त्यागा है। इसलिए शरीरादि वस्तु कोई अभूतपूर्व नहीं है। कहा भी है-

संसारो पंच-विहो दव्वे खेत्ते तहेव काले य।
भव-भमणो य चउत्थो पंचमओ भाव-संसारो।। (66)

अर्थ-संसार पाँच प्रकार का होता है-द्रव्य संसार, क्षेत्र संसार, काल संसार, भव संसार और भाव संसार।

बंधदि मुंचदि जीवो पडिसमयं कम्म-पुग्गला विविहा।
णेकम्म-पुग्गला वि य मिच्छत्त-कसाय-संजुत्तो।। (67)

मिथ्यात्व और कषाय से युक्त संसारी जीव प्रतिसमय अनेक प्रकार के कर्म पुद्गलों और नोकर्म पुद्गलों को भी ग्रहण करता और छोड़ता है।

कर्मबंध के पाँच कारण हैं-मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग, इनमें मिथ्यात्व और कषाय प्रधान हैं, क्योंकि ये मोहनीय कर्म के भेद हैं और सब कर्मों में मोहनीय कर्म ही प्रधान और बलवान् है। उसके अभाव में शेष सभी कर्म केवल निस्तेज ही नहीं हो जाते, किन्तु संसार परिभ्रमण का चक्र ही रुक जाता है। इसीलिए आचार्य ने मिथ्यात्व और कषाय को ही ग्रहण किया है। मिथ्यात्व के पाँच भेद है और कषाय के पच्चीस भेद हैं। इन मिथ्यात्व और कषाय के आधीन हुआ संसारी जीव ज्ञानावरण आदि सात कर्मों के योग्य पुद्गल स्कंधों को प्रतिसमय ग्रहण करता है। लोक में सर्वत्र कार्माण वर्गणाएँ भरी हुई हैं, उनमें से अपने योग्य को ही ग्रहण करता है तथा आयुकर्म सर्वदा नहीं बँधता। अतः सात ही कर्मों के योग्य पुद्गल स्कंधों को प्रतिसमय ग्रहण करता है और आबाधा काल पूरा हो जाने पर उन्हें भोगकर छोड़ देता है। जैसे प्रतिसमय कर्मरूप होने के योग्य पुद्गल स्कंधों को ग्रहण करता है वैसे ही औदारिक,

वैक्रियिक और आहारक इन तीनों शरीरों की छह पर्याप्तियों के योग्य नोकर्म पुद्गलों को भी प्रतिसमय ग्रहण करता है और छोड़ता है। इस प्रकार जीव प्रतिसमय कर्म पुद्गलों और नोकर्म पुद्गलों को भी ग्रहण करता और छोड़ता है। किसी विवक्षित समय में एक जीव में ज्ञानावरणादि सात कर्मों के योग्य पुद्गल स्कंध ग्रहण किए और आबाधा काल बीत जाने पर उन्हें भोगकर छोड़ दिया। उसके बाद अनंत बार अगृहीत का ग्रहण करके अनंत बार मिश्र का ग्रहण करके और अनंत बार ग्रहीत का ग्रहण करके छोड़ दिया। उसके बाद जब वे ही पुद्गल वैसे ही रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि भावों को लेकर, उसी जीव के वैसे ही परिणामों से पुनः कर्मरूप परिणत होते है। उसे कर्मद्रव्य परिवर्तन कहते हैं इसी तरह किसी विवक्षित समय में एक जीव ने तीन शरीरों की छः पर्याप्तियों के योग्य नोकर्म पुद्गल ग्रहण किए और भोगकर छोड़ दिए, पूर्वोक्त क्रम के अनुसार जब वे ही नोकर्म पुद्गल उसी रूप रस आदि को लेकर उसी जीव के द्वारा पुनः नोकर्म द्रव्य परिवर्तन को द्रव्य परिवर्तन या द्रव्य संसार कहते हैं। कहा भी है-

सर्वेऽपिपुद्गलाः खल्वेकेनात्तोज्झिताश्च जीवेन।

ह्यसकृद्धानन्तकृत्वः पुद्गलपरिवर्तन संसारे।।

पुद्गल परिवर्तन रूप संसार में इस जीव ने सभी पुद्गलों को क्रमशः अनंत बार ग्रहण किया और छोड़ दिया। जो पुद्गल पहले ग्रहण किये हो उन्हें गृहीत कहते हैं। जो पहले ग्रहण न किये हो उन्हें अगृहीत कहते हैं। दोनों के मिलान को मिश्र कहते हैं इनके ग्रहण का क्रम पूर्वोक्त प्रकार है। श्वेताम्बर संप्रदाय में द्रव्य परिवर्तन के दो भेद किये गये हैं-बादर द्रव्य परिवर्तन और सूक्ष्म द्रव्य परिवर्तन। दोनों के स्वरूप में भी अंतर है, जो इस प्रकार है-'जितने समय में एक जीव समस्त परमाणुओं को औदारिक, वैक्रियक, तैजस, भाषा, आनप्राण, मन और कार्माण शरीर रूप परिणमनकर, उन्हें भोगकर छोड़ देता है, उसे बादर द्रव्य परिवर्तन कहते हैं और जितने समय में समस्त परमाणुओं को औदारिक आदि सात वर्गणाओं में से किसी एक वर्गणा रूप परिणमनकर उन्हें भोगकर छोड़ देता है उसे सूक्ष्म द्रव्य परिवर्तन कहते हैं।'

सभी अनुशासन के मूल आत्मानुशासन

(चाल : आत्मशक्ति....., क्या मिलिये.....)

आत्मानुशासन सभी अनुशासन (के) मूल, आत्मानुशासन से अन्य अनुशासन सफल।

मूल के बिन यथा न होते फूल-फल, आत्मानुशासन बिना अन्य अनुशासन निष्फल।। (1)

इस हेतु चाहिए आत्मविश्वास व ज्ञान, संयम धैर्य दृढ़ता आत्मावलंबन।
समता-सहिष्णुता व कर्त्तव्यनिष्ठा, विनय सदाचार व समयानुबद्धता।। (2)

इस हेतु चाहिए आत्मा की पवित्रता, सरल-सहजता व द्वंद्व से रिक्तता।
महान् लक्ष्य व लक्ष्य की स्पष्टता, स्वपर उपकार सहित भाव उदारता।। (3)

इस हेतु राग द्वेष परे होना विधेय, ईर्ष्या तृष्णा घृणा परे (हो) पावन ध्येय।
संकीर्ण स्वार्थ व मोह कामांध परे, भेद-भाव पक्ष-पात क्षुद्रता परे।। (4)

उक्त गुण बिन न आत्मानुशासन संभव, केवल सत्ता-संपत्ति-बुद्धि से असंभव।
आत्मानुशासन बिन सत्तादि मात्र से, अनुशासन भंग होता हर क्षेत्र में।। (5)

उद्दण्ड उत्श्रृंखलता व नैतिक पतन, अव्यवस्थित काम न कर्त्तव्यहीन।
फैशन-व्यसन व भ्रष्टाचार के काम, चोरी ठगी व मिलावट बेईमान।। (6)

आक्रमण युद्ध व लूटपाट विध्वंस, बलात्कार से लेकर आतंकवाद।
स्व-पर अहितकर व सभी अनर्थ काम, प्रदूषण फैलाना आदि सभी अनुशासनहीन।। (7)

आत्मानुशासन बिन सभी नियम-कानून, संविधान राजनीति सामाजिक नियम।
धार्मिक रीति-रिवाज व परंपरा आदि, व्यर्थ होते (यथा) आत्मा बिन शरीर आदि।। (8)

आत्मानुशासन हेतु चक्रीं भी बनते साधु, आत्मानुशासन (पूर्ण) से बनते त्रिलोक प्रभु।
नरेन्द्र से देवेन्द्र तक बनते शिष्य, आत्मानुशासन हेतु विभू देते प्रबोध।। (9)

हर महान् कार्य होते आत्मानुशासन से, हर विनाश कार्य होते इसके अभाव से।
अन्य सभी बाह्य कारण होते सहायक, पूर्ण आत्मानुशासन चाहे सूरी 'कनक'।। (10)

सीपुर, दिनांक 30.12.2016, मध्याह्न 2.45

संदर्भ-

आदहिदं कादव्वं यदि चेत् परहिदं कादव्वं,
आदहिदं परहिदादं आदहिदं सुट्ठू कादव्वं।
उत्तमा स्वात्म चिंतास्यान्मोहचिन्ता च मध्यमा,
अधमा कामचिन्ता स्यात् परचिंताऽधमाधमा।।

अर्थात् जिस प्रकार दीपक स्वयं पहले प्रकाशित होकर दूसरों को प्रकाशित

करता है, उसी प्रकार तुम स्वयं स्व-उपकार करते हुए परोपकार करो। इसके बिना अन्य समस्त प्रपञ्च, ढोंग-पाखण्ड, संक्लेश त्याग करो।

कुबोध रागादि विचेष्टितैः फलं, त्वयाऽपि भूयो जननादि लक्षणम्।
प्रतीहि भव्य प्रतिलोम वृत्तिभिः, ध्रुवं फलं प्राप्यसि तद्विलक्षणम्।। (106)

(आत्मानुशासनम्)

हे भव्य! तूने बार-बार मिथ्यात्व, ज्ञान एवं राग-द्वेषादि जनित प्रवृत्तियों से जो जन्म-मरणादि रूप फल प्राप्त किया है उसके विरुद्ध प्रवृत्तियों-सम्यग्ज्ञान एवं वैराग्य जनित आचरणों-के द्वारा तू निश्चय से उसके विपरीत फल-अजर-अमर पद को प्राप्त करेगा, ऐसा निश्चय कर।

दयादमत्याग समाधि संततेः पथि प्रयाहि प्रगुणं प्रयत्नवान्।
नयत्यवश्यं वचसामगोचरं विकल्पदूरं परमं किमप्यसौ।। (10)

हे भव्य! तू प्रयत्न करके सरल भाव से दया, इन्द्रिय दमन, दान और ध्यान की परंपरा के मार्ग में प्रवृत्त हो जा वह मार्ग निश्चय से किसी ऐसे उत्कृष्ट पद को प्राप्त कराता है जो वचन से अनिर्वचनीय एवं समस्त विकल्पों से रहित है।

दया-दम-त्याग-समाधिनिष्ठम् नय प्रमाण प्रकृताङ्ञ्साऽर्थम्।
अधृत्यमन्यैरखिलैः प्रवादैः, जिन! त्वदियं मतमद्वितीयम्।। (6)

युक्त्यानुशासनम्

हे वीर जिन! आपका यह अनेकांत रूप शासन अद्वितीय है। क्योंकि इसमें दया, दम, त्याग और समाधि में तत्परता है। नयों एवं प्रमाणों द्वारा इसमें द्रव्य पर्याय स्वरूप जीवादिक तत्त्वों का अविरोध रूप से, सुनिश्चित असंभव बोधक रूप से निर्णय किया गया है एवं इसमें समस्त एकांत प्रवादों दर्शन मोहनीय के उदय से सर्वथा एकांतवादियों की कल्पित मान्यताओं द्वारा किसी भी प्रकार की बाधा नहीं आ सकती है।

हे आत्मन्! मोक्ष प्राप्ति का पूर्ण अद्वितीय मार्ग रत्नत्रय ही है। अनंत अनंतदर्शियों ने इस मार्ग पर चलते हुए मोक्ष को प्राप्त किया है। वे अनंतज्ञान को प्राप्त करके पूर्ण रूपेण प्रत्यक्ष से अनुभव करके रत्नत्रयात्मक मार्ग को ही यथार्थ मार्ग और इससे अतिरिक्त कुमार्ग, दुःख का मार्ग एवं संसार का मार्ग है। आचार्य प्रवर समंतभद्र स्वामी ने कहा भी है-

सदृष्टिज्ञान वृत्तानि धर्म धर्मेश्वरा विदुः।

यदिय प्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धति।। (3)

सद्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र ही धर्म है, मोक्ष का मार्ग है, इससे विपरीत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान एवं कुचारित्र ही कुधर्म है, दुःख का मार्ग है, संसार का मार्ग है, ऐसा धर्म के ज्ञाता धर्म के प्रभु ने बताया है। आचार्य उमास्वामी भी मोक्ष प्रतिपादक शास्त्र का प्रतिपादन करते हुए प्रथम पंक्ति में बताते है कि-

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्गः।। (तत्त्वार्थसूत्र)

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन तीनों का सम्यक् संयोग रूप त्रयात्मक मोक्ष का मार्ग है।

Right belief, Right knowledge (right) Conduct, these (together constitute) the path to liberation.

"Self reverence, self knowledge and self control, these three alone lead life to sovereign power."

निर्विकार से विकास तो विकार से पतन

मुक्तिमिच्छासि चेत्तातः विषयान् विषवत्यज।

क्षमार्ज्जवदयातोषं सत्यं पियूषवद् भज।। (सू. 2 अष्टावक्रगीता)

हे प्रिय! यदि तू मुक्ति चाहता है तो विषयों को विष के समान छोड़ दे और क्षमा, आर्जव, दया, संतोष और सत्य को अमृत के समान सेवन कर।

जो तपस्वी विनयहीन है अर्थात् गुरुजनों का विनय नहीं करता उसका शास्त्राध्ययनादि मुक्ति की प्राप्ति तथा स्वर्ग श्री का कारण नहीं है।

जिनज्ञावर्तनं कीर्ति मैत्री मानापनोदनम्।

गुणानुरागिता संघसम्मदाधाश्च तद्गुणाः।। (84)

विनय से जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञा का पालन होता है, जगत् में निर्मल सत्कीर्ति रूपी लता विस्तरित होती है, सर्वजनों के मैत्री भाव प्रगट होता है, मान कषाय का नाश होता है तथा चतुर्विध संघ विनयशील मानव पर संतुष्ट होते हैं इत्यादि अनेक विनय के गुण है।

किमत्र बहुनोक्तेन पदं सर्वेष्ट सम्पदाम्।

रत्नत्रयीविभूषायां येन मुक्ति निबन्धनं।। (85)

विशेष कहने से क्या प्रयोजन है। विनय सर्व इष्ट संपदाओं का स्थान है,

रत्नत्रय का भूषण है और मुक्ति का कारण है।

विनयफल-सर्वकल्याण

विणएण विप्पहूणस्स हवदि सिक्खा णिरत्थिया सव्वा।

विणओ सिक्खाए फलं विणयफलं सव्वकल्याणं।। (भा.आ.प्र.170 गा.130)

विनय से रहित साधु की सब शिक्षा निष्फल होती है। शिक्षा का फल विनय है विनय का फल सब का कल्याण है।

विनय रहित साधु की सब शिक्षा निष्फल है क्योंकि पूर्व में कही पाँच प्रकार की विनय शिक्षा का फल है और उस विनय का फल सर्व कल्याण है। सब लौकिक अभ्युदय और मोक्ष रूप कल्याण उसका फल है अर्थात् विनय से मान, ऐश्वर्य आदि तथा इन्द्रियजन्य और अतीन्द्रिय सुख मिलता है।

विणओ मोक्खद्वारं विणयादो संजमो तवो णाणं।

विणएणाराहिज्जइ आयरिओ सव्वसंघो य।। (131)

विनय मोक्ष का द्वार है। विनय से संयम, तप और ज्ञान की प्राप्ति होती है। विनय से आचार्य और सर्व संघ अपने वश में किया जाता है।

जैसे द्वार इष्ट देश की प्राप्ति का उपाय होता है उसी तरह समस्त कर्मों के विनाश रूप मोक्ष की प्राप्ति का उपाय विनय है इसलिए मोक्ष का द्वार कहा है। पूर्व में कहीं पाँच प्रकार की विनय के होने पर ही कर्मों से छुटकारा होता है। विनय से ही संयम होता है। क्योंकि जो पाँच प्रकार की विनयों में सदा लगा रहता है वहीं असंयम को त्यागने में समर्थ होता है, जो विनयों में प्रवृत्ति नहीं करता वह असंयम को ही नहीं छोड़ सकता। यदि इन्द्रियों और कषायों की ओर से विमुखता न हो तो कैसे इन्द्रिय संयम या प्राणि संयम हो सकता है तथा ज्ञानादिकी विनय से शून्य अनशन आदि कर्म को नष्ट कर सकते हैं। इसलिए तप में तपपना का कारण विनय है ऐसा मानकर 'विनय से तप होता है' कहा है तथा ज्ञान का कारण भी विनय है। अविनीत पुरुष ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता और विनय से आचार्य तथा समस्त संघ अपने वश में हो सकता है।

आयारजीवकप्पगुणदीवणा अत्तसोधि णिज्झंझा।

अज्जव मद्दव लाघव भत्ती पल्हादकरणं च।। (132)

आचार के क्रम तथा कल्प्य गुणों को प्रकाशन, आत्मशुद्धि, वैमनस्य का

अभाव, आर्जव, मार्दव, लघुता, भक्ति और अपने और दूसरों को प्रसन्न करना, ये विनय के गुण हैं।

'कल्प्यते इति कल्प्यं' अर्थात् योग्य कल्प्य गुणों को कल्प्य गुण कहते हैं। आचार के क्रम का कल्प्य गुणों का प्रकाश आयारजीद कल्प गुण शब्द का अर्थ है। इससे यह कहा है कि विनय करने से श्रुत की आराधना और चारित्र की आराधना होती है तथा विनय करना आत्मशुद्धि का अर्थात् ज्ञान दर्शन और वीतराग रूप परिणति का निमित्त है अथवा ज्ञानादि विनय रूप परिणति कर्ममल के विनाश से प्राप्त होती है अतः उसे आत्मा की शुद्धि कहते हैं। जैसे कीचड़ के दूर होने पर जलादि की शुद्धि होती है। 'णिज्झंझाका' अर्थ वैमनस्य का अभाव है। जो विमनस्क होता है अर्थात् जिसका मन स्थिर नहीं होता वह विनयहीन होता है। गुरु उस पर अनुग्रह नहीं करते। ऋजु मार्ग पर चलने को आर्जव कहते हैं और शास्त्र के कहे गये आचरण को ऋजु कहते है। मार्दव अर्थ अभिमान का त्याग है। दूसरे के गुणातिशय में श्रद्धा करने से और उनके माहात्म्य को प्रकट करने से तथा विनय करने से अभिमान का ह्रास स्वयं हो जाता है। जो विनीत साधु होता है वह अपना भार आचार्य पर सौंपकर लघु हो जाता है। अर्थात् आचार्य स्वयं उसकी चिंता करते हैं अतः लाघव का मूल विनय है। जो विनीत होता है सभी मनुष्य उसकी विनय करते हैं अतः विनय भक्ति का कारण है। प्रकृष्ट सुख को प्रह्लाद कहते हैं उसका करना प्रह्लादकरण है। जिनकी विनय की जाती है उनको सुख होता है इस प्रकार दूसरों को प्रसन्न करना विनय का गुण है। अपने को प्रसन्न करना भी विनय गुण है, क्योंकि जो अविनयी होता है सब उसका तिरस्कार आदि करते हैं अतः वह निरंतर दुःखी रहता है और जो विनयी होता है उसका कोई तिरस्कार आदि नहीं करता अतः वह सुखी रहता है क्योंकि लोक में बाधा के अभाव को ही सुख कहा जाता है।

कित्ती मेत्ती माणस्स भंजणं गुरुजणे य बहुमाणो।
तित्थराणं आणा गुणाणुमोदो य विणयगुणा।। (133)

कीर्ति, मित्रता, मान का विनाश, गुरुजनों का बहुमान और तीर्थंकरों की आज्ञा का पालन और गुणों की अनुमोदना ये विनय के गुण हैं।

यह विनयी है ऐसा कहना कीर्ति है। विनयी की कीर्ति होती है। दूसरों को दुःख न होने की भावना मैत्री है। जो विनीत होता है वह दूसरों को दुःख देना नहीं चाहता

और मान का भंग होता है।

शंका–पूर्व गाथा में मार्दव शब्द से मानभंग को कहा ही है। पुनः कहने से पुनरुक्ता दोष आता है?

समाधान–यहाँ पर के मानभंग को कहा है। एक की विनय देखकर दूसरा भी अपना मान छोड़ देता है, क्योंकि लोग प्रायः गतानुगतिक है। दूसरों को जैसे करता देखता है स्वयं भी वैसा करता हैं। वे सोचते हैं-निश्चय ही अभिमान का त्याग गुण है, अन्यथा वह विनय क्यों करता? विनय से गुरुओं का बहुत मान होता है क्योंकि विनयी शिष्य अपने गुरुजनों को बहुत सम्मान करता है तथा तीर्थंकरों की आज्ञा का पालन होता है अर्थात् विनय का उपदेश देने वाले तीर्थंकरों की आज्ञा का पालन विनय करने से होता है तथा गुरुजनों की विनय करने से उनके गुणों की अनुमोदना होती है। कोई कहते हैं कि श्रद्धानादि गुणों में हर्ष प्रकट होता है। ये विनय के गुण हैं। यहाँ गुण शब्द उपकारवाची है। विनय से पैदा होने के कारण इन्हें विनय के गुण कहते है।

वात्सल्य रत्नाकर आचार्यश्री विमलसागर गुरुदेव का समाधि दिवस कृतज्ञतापूर्वक सम्पन्न

अतिशय क्षेत्र सीपुर ग्राम स्थित देव-शास्त्र-गुरु जिनालय में विराजित स्वाध्याय तपस्वी आचार्य भगवन्त श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव ससंघ सान्निध्य में आद्य मार्गदर्शक गुरु आचार्य विमलसागर जी गुरुदेव का समाधि दिवस अत्यंत श्रद्धा-भक्ति व कृतज्ञता भावपूर्वक मनाया गया। वात्सल्य रत्नाकर आचार्यश्री विमलसागर जी गुरुदेव की मनोज्ञ प्रतिमा के अभिषेक अर्चन पूजन के अनन्तर आचार्यश्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा सृजित भावभीनी कविता ''मेरे आद्य मार्गदर्शक गुरु आचार्य विमलसागर जी व आचार्य भरतसागर जी गुरुदेव'' के गायन के समय आचार्य कनकनन्दी जी गुरुदेव अत्यंत द्रवीभूत होते हुए अश्रु बहाने लगे किन्तु चूँकि आचार्यश्री के प्रवचन उद्बोधन के क्षण थे इसीलिए आचार्यश्री ने अपने आँसुओं को रोकते हुए अत्यंत कृतज्ञ भाव से प्रेरणादायी अनुभव व संस्मरण सुनाये वरन् आचार्यश्री उनके संवेदनशील व्यक्तित्व व प्रकृति के अनुसार घंटों रूदन करते।

आचार्यश्री ने अपने गुरु विमलसागर जी के वात्सल्य-प्रेरक-प्रोत्साहक गुणों

का स्मरण करते हुए उपस्थित जनों को महापुरुषों के महान् उपकारों का स्मरण करते हुए बताया कि आचार्य विमलसागर व आचार्य भरतसागर जी मेरे गुरु होते हुए भी मुझे स्वाध्याय, अध्यापन, ग्रंथ सृजन, प्रवचन हेतु आगे रखते हुए अत्यंत आह्लादित व प्रसन्न होते थे व मुझे कलिकाल समंतभद्र व अकलंक कहते थे। इस अवसर पर गुरुदेव ने आचार्य महावीर कीर्ति, आचार्य सन्मतिसागर (ज्ञानानंद) आचार्य कुंथुसागर, आचार्य देशभूषण, विदुषी आर्यिका विजयमती माता आदि के उपकार, मार्गदर्शन प्रोत्साहन आदि गुणों का बार-बार स्मरण करते हुए कृतज्ञता भाव ज्ञापित किया। इस पावन बेला में गुरुदेव विमलसागर जी के स्मरण में उपस्थित जनों को भावात्मक नियम देते हुए कहा कि कोई भी व्यक्ति अच्छा कार्य-भाव करे तो उसकी प्रशंसा व अनुमोदना करें, यदि इतना भी नहीं कर पाते तो निन्दा व ईर्ष्या नहीं करें। इस अवसर पर सागवाड़ा कॉलोनी से पधारी गुरुदेव की नवोदित शिष्या कु. खुशी सुपुत्री राजेश जैन को ''बाल कवयित्री'' की उपाधि प्रशस्ति प्रदान की। गीताञ्जली धारा...56 व 57 का विमोचन भी हुआ। विजयलक्ष्मी को 'कवयित्री' व जिनेन्द्रा को 'सेवाश्री' उपाधि प्रदान की।

शुभभावना सह-श्रमण सुविज्ञसागर

मुझे ऐसी सभ्यता नहीं चाहिए...!?

(चाल : इस देश में गाँधी....., हर देश में तू....., छू लेने दो.....)

मुझे ऐसी सभ्यता नहीं चाहिए, जिसमें न हो आध्यात्मिकता।
केवल भौतिक विकास को ही, माना जाता हो संपूर्णता।। (ध्रुव)

दया दान सेवा परोपकार बिना, नैतिक-आत्मिक विकास बिना।
केवल भोगपभोग साधन द्वारा, होती जो सभ्यता शांति बिना।
इस हेतु होते शोषण-आक्रमण युद्ध, होते अन्याय से ले आतंकवाद।। (1)

इस हेतु लोप हुआ रोमन साम्राजय, रावण कंस से ले मय साम्राज्य।
हिटलर से लेकर सद्दाम हुसैन, इसके लिए प्रसिद्ध उदाहरण।
व्यकित से लेकर साम्राज्य तक, प्राचीन से ले आधुनिक तक।। (2)

भौतिकवादी सभ्यता के कारण, वर्तमान में हो रहा प्रकृति का हनन।
जिससे बढ़ रहे विभिन्न प्रदूषण, तापमान से ले जीवों का विलोपन।

विभिन्न रोग बढ़ रहे दिनोंदिन, तन-मन-अक्ष हो रहे हैं रुग्ण।। (3)
भौतिक विकास को ही सभ्यता मानने वाले, महान् लक्ष्य-भावना से रहित होते।
संकीर्ण स्वार्थी अनुदार दंभी होते, फैशनी-व्यसनी विलासी होते।
अन्याय-अत्याचार-पापाचार करते, आत्मा-परमात्मा को नहीं मानते।। (4)
मैं नहीं हूँ केवल भौतिकमय, तन-मन-इन्द्रिय व दिमागमय।
इससे परे हूँ मैं अमूर्तिक चेतन, अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्यवान्।
स्व-स्वरूप को पाना मेरा परम लक्ष्य, भौतिक सभ्यता से न प्राप्त संभव।। (5)
नैतिक व आध्यात्मिक लक्ष्य रहित, सत्ता-संपत्ति से भी न मिले सुख।
तनाव से ले आत्महत्या संभव, संस्कृति-सदाचार-शांति से न्यून।
स्व-पर-विश्वहित भी नहीं संभव, 'कनक' चाहे स्व-पर-विश्व हित।। (6)

वह शिक्षा मुझे नहीं चाहिए...!?

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : इस देश में गाँधी....., हर देश में तू....., छू लेने दो.....)
वह शिक्षा मुझे नहीं चाहिए, जिस शिक्षा से न मिले सर्वोदय।
तोता रटंत नकलची शिक्षा, जिससे न होता ज्ञानोदय।। (ध्रुव)
वह शिक्षा ही मुझे चाहिए, जिससे हो तन-मन-आत्म स्वस्थ।
बौद्धिक (I.Q.) विकास के ही साथ-साथ, E.Q., S.Q. Grit/(दृढ़ता, धैर्य) का हो विकास।
भौतिकता से परे नैतिक वृद्धि, दीन-हीन-दंभ परे 'सोऽहं' 'अहं' प्राप्ति।। (1)
अन्यथा शिक्षा न होती सही उपकारी, एकांगी शिक्षा होती अहितकारी।
दोनों पैर जब न होते एक समान, चलना आदि में न होता संतुलन।
एकांगी शिक्षा होती असंतुलित, जीवन होता है अव्यवस्थित।। (2)
ऐसी शिक्षा से न मिले आत्मानुशासन, संयम दृढ़ता धैर्य व आत्मज्ञान।
दया दान सेवा व परोपकार त्याग, संवेदनशीलता व क्षमादि भाव।
उदार सहिष्णुता व आत्मानुभव, स्व-पर विश्व हितकर पावन भाव।। (3)
जिससे लक्ष्य होता संकीर्ण स्वार्थपूर्ण, फैशन-व्यसन-आलस्य लेते जन्म।
दीन-हीन-अहंकार भी होते उत्पन्न, शोषण-मिलावट-भ्रष्टाचार उत्पन्न।
हिताहित विवेक शून्य दंभपूर्ण ज्ञान, नैतिक-आत्मिक शून्य भौतिक ज्ञान।। (4)

इससे न मिले सत्य-साम्य-सुख, प्रेम-संगठन-सहयोग-सौम्य।
अन्त्योदय-सर्वोदय अतः न संभव, तनाव-विषमता होते उत्पन्न।
अतः ऐसी शिक्षा मुझे न चाहिए, 'कनक' को सर्वोदय शिक्षा ही चाहिए।। (5)

दि. श्वे. जैनियों हेतु महत्ती सूचना

श्वेताम्बर भक्तों द्वारा निस्पृही आचार्य कनकनन्दी श्रीसंघ को चातुर्मास हेतु पुनश्च निवेदन

अन्तर्राष्ट्रीय गौरव स्थली मेवाड़ की पुण्य धरा हल्दीघाटी में प.पू. निस्पृह संत समता शिरोमणि आचार्यश्री कनकनन्दी जी गुरुवर ससंघ का आगामी (वर्ष 2018) चातुर्मास-प्रवास कराने हेतु अखिल भारतीय जैन एकता मञ्च संस्थान द्वारा पुनः हार्दिक निवेदन किया जा रहा है। संस्थान के पदाधिकारी राष्ट्रीय संयोजक श्री मांगीलाल जी मादरेचा व सहयोगी निरंतर प्रयासरत हैं।

समता तीर्थधाम, अतिशय क्षेत्र सीपुर में भी अनेकों बार अनुरोध कर मगरा क्षेत्र के श्वेताम्बर-दिगम्बर व अजैन भक्तों को सशीघ्र आचार्य श्रीसंघ की भक्ति-अनुरोध व दर्शनार्थे लाने का भावभीना मानस प्रस्तुत किया है। आचार्य श्रीसंघ की ओर से उनके महान् शुभ भावों हेतु अनुमोदना व शुभाशीष है।

वर्ष 2013 में भी उपरोक्त भूमि पर आचार्य श्रीसंघ का प्रभावनापूर्वक चातुर्मास-प्रवास हो चुका है, जिसके परिणामस्वरूप उस अञ्चल के जन-गण-मन अत्यंत प्रेरित-उत्साहित-उल्लासित व प्रतीक्षारत हैं।

श्वेताम्बर भक्तों के अनेक बार पुनः-पुनः निवेदन के कारण आचार्यश्री ने उन्हें कहा कि वर्ष 2018 का चातुर्मास कराने हेतु पूर्व में ही ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा के भक्त शिष्य श्री कान्तिलाल जी जैन द्वारा निवेदन हुआ है इसीलिए अभी आपको पूर्णतः सहमति सहित आशीर्वाद नहीं दे रहा हूँ, किन्तु यदि कान्तिलाल जी की अनुमति आपके यहाँ श्रीसंघ का चातुर्मास करने हेतु मिलेगी अथवा किसी कारणवशतः वहाँ चातुर्मास नहीं हुआ तो आपकी भावनानुसार वर्ष 2018 का चातुर्मास हल्दीघाटी में होना संभावित है। इसी हेतु आपको शभाशीर्वाद!

शुभाकांक्षा सह-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर
संघस्थ, आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुवर, सीपुर प्रवासरत